प्रकाशकीय

"योगेश्वर श्रीकृष्ण" का यह द्वितीय संस्करण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव प्रसन्नता हो रही है। भारत के गौरवशाली इतिहास में सूर्यवंश में श्री रामचन्द्र और चन्द्रवंश में श्री कृष्णचन्द्र का नाम अतीव सम्मान के साथ आज भी लिया जाता है। उन दोनों महापुरुषों का पावन तथा आदर्श चरित्र भारत को नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व के अतीत में शान्ति व कल्याण पथ का प्रदर्शन करता रहा है और दुःख-सन्तप्त, अशान्त, निराश, कर्तव्यविमुख तथा पथभ्रष्ट लोगों को सुख-शान्ति का सन्देश देकर कर्तव्य व सन्मार्ग का दर्शन कराकर संजोवनी बूटी की भाँति संजीवन देता रहा है और भविष्य में भी निस्सन्देह देता रहेगा। भारतीय संस्कृति व सभ्यता के देदीप्यमान सूर्य-चन्द्र की भाँति उज्ज्वल ये सितारे हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक समस्त देश को संस्कृति, सभ्यता व भावना के एकता सूत्र में आज भी बांधे हुए हैं। हम आज भी स्वनाम धन्य इन महापुरुषों के नाम बड़े गौरव व सम्मान से लेते हैं। इन दोनों ही महापुरुषों के चरित्रों पर पौराणिक कालीन अवतारवाद अथवा इनको भगवान बनाने की स्पर्धा में घड़े काल्पनिक, आख्यानों से जो श्यामता छा गई थी उससे इनका चरित्र हिमालय से निकली गंगा की स्वच्छ धारा को हुगली (कलकत्ता) की कलुषित गंगा की भाँति कलुषित करके जो विकृत कर दिया गया था, उसको १९वीं शदी के महान् सुधारक महर्षि दयानन्द ने स्वच्छ व निष्कलंक बनाने का महान् उद्योग किया है। उनके बताये मार्ग पर चलकर ही आज हम राम-कृष्ण के वंशज रामकृष्ण के सच्चे स्वरूप को फिर से समझ सकते हैं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण के पावन चरित्र को जन-जन तक पहुंचाना आज की परिस्थिति में अत्यावश्यक हो गया है। उनके स्वच्छ चरित को पढ़ कर ही हम श्रीकृष्ण के नकली भक्ति-पाश से मुक्त होकर सच्चे भक्त बन सकते हैं। श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र को धारण कर बड़े-बड़े अन्यायी तथा अत्याचारी साम्राज्यों को नष्ट कर धर्म राज्य की स्थापना की थी।

आज भी बढ़ते हुए अधर्म, अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने की परमावश्यकता है। इसके लिये कृष्णभक्तों में कृष्ण के पाँचजन्य शख के समान एकता का स्वर, बंशी और गोपी प्रसङ्गों को छोड़कर ब्रह्मचर्य व योग की शक्ति को धारण करने और अन्याय का प्रतिरोध करने के लिये आत्मिक शक्ति व शस्त्रास्त्र धारण करने की महती आवश्यकता है। हम उनके चित्र के ही भक्त न होकर चरित्र के भी भक्त बनें, ऐसे दृढ़ संकल्प को धारण करके स्वावलम्बी होना अत्यावश्यक है।

'योगेश्वर श्री कृष्ण' के प्रथम-संस्करण में उच्चकोटि के विद्वानों के लेखों का ही संग्रह किया गया था। यद्यपि उन लेखों में भी कृष्ण के आदर्श चरित का ही कथन विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया था, किन्तु क्रमबद्ध श्रीकृष्ण का जीवन-चरित नहीं था। प्रस्तुत संस्करण में महाभारत के आधार पर श्रीकृष्ण का जीवन चरित भी दिया जा रहा है। इस के संकलन एवं सम्पादन करने में श्री पं० राजवीर शास्त्री ने जो अत्यधिक श्रम किया है, मैं उनका हृदय से साधुवाद करता हूं।

आर्ष-भक्त
धर्मपाल आर्य
मन्त्री आर्ष-साहित्य प्रचार ट्रस्ट
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

दिनांक २४ अगस्त ८६

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में श्री कृष्ण का स्थान

"देखो, श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्तपुरुषों[1] के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण, श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती।"

(स०प्र० ११वां समु०)

---

१. आप्तपुरुष का लक्षण : जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष, जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो, उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित, सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो।" (स० प्र० तृतीय समु०)

सम्पादकीय

जन्माष्टमी का पावन-पर्व

भारतीय-संस्कृति में त्योहारों का एक विशिष्ट स्थान है। यदि यह कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वैदिक-संस्कृति से अनुप्राणित भारतीय समाज में ऐसा कोई दिन होता होगा कि जिस दिन कोई त्योहार न होता हो। पूरे वर्ष त्योहारों की क्रमाला चलती ही रहती है। उन समस्त त्योहारों का क्या मूल्यांकन है ? यद्यपि यह एक पृथक् चर्चा का विषय है, किन्तु यह तो सत्य है कि आर्य जाति सदा से ही पर्व-प्रिय रही है, और पर्वों को बहुत आमोद-प्रमोद के साथ मनाती रही है और यही कारण है कि यह आर्य जाति अपने उज्ज्वल गौरवपूर्ण अतीत को इन पर्वों के माध्यम से स्मरण करके ही विदेशियों से पादाक्रान्त होने पर भी विदेशी संस्कृति व सभ्यताओं से संघर्ष करती रही और अपनी जीवन-प्रद संस्कृति को जीवित रखती रही। सच कहा है कि जिस राष्ट्र में अपने पूर्वजों के सम्मान को पर्वों के माध्यम से जीवित रखा जाता है तथा पर्वों को सहर्ष मनाया जाता है, वे राष्ट्र तथा जातियाँ सदा उन्नति करते हैं।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी का यह पावन पर्व भी एक ऐसी विशिष्ट स्मृति को संजोये हुए है, जिसे स्मरण करके मृतप्राय, निराश, असहाय तथा निर्बल व्यक्तियों में भी जीवन, उत्साह, आशा, सनाथता का आश्रय तथा जीवन की ज्योति की झलक दिखाई देने लगती है। श्रीकृष्ण की जीवन गाथा यथार्थ में मृत संजीवनी है, जिसे पढ़कर अथवा सुनकर कायर, डरपोकों के मन में भी वीरता, निर्भयता का संचार हुए बिना नहीं रहता। श्री कृष्ण के कार्यों तथा उपदेशों को पढ़कर तो एक ऐसी आध्यात्मिक ज्ञान की पावन धारा प्रवाहित हो जाती है कि महाःदुखों में निमग्न निराश व्यक्ति भी दुःखों को भूलकर आनन्दित होने लगता है। ठीक ही कहा है—**'स जातो येन जातेन याति वंशसमुन्नतिम्'** संसार में ऐसे महामानवों का ही जन्म सफल होता है, जिनसे परिवार, जाति व राष्ट्र उन्नति को प्राप्त करते हैं और महर्षिदयानन्द के शब्दों में ऐसे व्यक्ति ही अहोभाग्यशाली होते हैं, जिनका समस्त जीवन निःस्वार्थ सेवा में ही लगा हो—**"धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः।"**

किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि इतने महान्, उदारचेता व आप्तपुरुष श्रीकृष्ण का चरित जितना महान् व पवित्र है, हमने उसको उतना ही अधिक निकृष्ट व अपवित्र बना डाला है। इससे अधिक क्या गिरावट की हद हो सकती है कि श्रीकृष्ण के तथाकथित भक्तों ने ही एक तरफ तो श्रीकृष्ण को मानवता से हटाकर ईश्वर का ही अवतार बना दिया और दूसरी तरफ श्रीकृष्ण को 'चोर-जार-शिरोमणिः'= 'चोरों व व्यभिचारियों का सरदार' कहकर सामान्य मानव से भी नीचे गिरा दिया। जिसके दूरगामी परिणामों को इन श्रीकृष्ण के नकली भक्तों ने कभी नहीं सोचा कि हम जैसे हैं, वैसे ही रह लें किन्तु अपने प्रेरणा देने वाले आदर्श महापुरुषों को तो कलंकित न करें। हम यदि इतने पतित हो गये हैं तो रहें, किन्तु उस आदर्श जीवन से दूसरों को तो प्रेरणा लेने देवें। यदि हम श्रीकृष्ण के सदृश नहीं बन सकते तो न बनें, किन्तु श्रीकृष्ण को अपने सदृश नराधम तो न बनायें। यदि वे ऐसा विचार करते तो वे पापरत ही क्यों होते। ठीक ही कहा है कि "स्वार्थी दोषं न पश्यति।" अर्जुन के साथ कर्ण के युद्ध में जब कर्ण के रथ का चक्र कीचड़ में धंस गया और कर्ण ने धर्म की दुहाई दी, उस समय श्री कृष्ण ने कर्ण के लिये जिन शब्दों का प्रयोग किया था, क्या श्री कृष्ण के पावन चरित को दूषित करने वाले भी उन्हीं शब्दों के अधिकारी नहीं हैं :—

प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना, निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम्॥

अर्थात् जो पामर जन होते हैं, वे बुरे व्यसनों में फंसकर भाग्य को बुरा बताते हैं, अपने दुष्कर्मों को नहीं। आज इन महापुरुषों के जीवनों को कलंकित करने का ही यह परिणाम है कि इस समय कुछ विदेशी शक्तियां श्रीकृष्ण के प्रति घृणाभाव फैलाकर उन्हें ईसा-मूसा की भेड़-बकरियों में बड़ी तेजी से मिला रही हैं। क्या आर्य-जाति के इस क्रमिक विनाश को देखते हुए भी श्रीकृष्ण के तथाकथित भक्त सचेत नहीं होंगे? क्या आर्य संस्कृति को समूल नष्ट करने के इन गुप्त षड्यन्त्रों को वे आंखें बन्द करके सहते ही रहेंगे? क्या अब भी उनकी यह उन्मादपूर्ण निद्रा भंग नहीं होगी? विधर्मी लोग तो रामकृष्ण के भक्तों को विधर्मी बनाकर हमारे राष्ट्ररूपी शरीर को क्षत-विक्षत करने में लगे हैं? यदि भविष्य में भी ऐसा ही विनाश का क्रम जारी रहा और हम नहीं चेते, तो भविष्य में राम-कृष्ण का कोई नामलेवा भी शायद ही रह पायेगा।

इसलिए इस पावन-पर्व पर समस्त कृष्ण-भक्तों को श्रीकृष्ण के उदात्त-चरित पर निष्पक्ष भाव से विचार करना चाहिये और श्रीकृष्ण

के दूषित काल्पनिक चरित का परित्याग कर अपनी जाति एवं राष्ट्र की एकता बनाने के लिये अपने भूले भटके भाइयों को भी श्रीकृष्ण के आदर्श चरित को बताकर, समझाकर अथवा सुनाकर अपने हृदय से लगाना चाहिये। आज की यह बहुत बड़ी सामयिक चेतावनी समस्त राम-कृष्ण के भक्तों के सामने आई हुई है कि आज अशान्ति और दुख की विभीषिकाओं से त्रस्त मानव जाति को किस कृष्ण की आवश्यकता है? सुदर्शनधारी श्री कृष्ण चाहिये या वंशीवादक? महाभारत के ज्ञान-बल में सर्वातिशायी कृष्ण चाहिये या ब्रजबालाओं के साथ रास करने वाला कृष्ण? गदा एवं मल्लविद्या का मर्मज्ञ वीर कृष्ण चाहिए या भागवत का चोर-जार शिरोमणि कृष्ण? योगेश्वर व निर्भय कृष्ण चाहिए या स्नान करती हुई गोपबालाओं से रंगरेलियाँ करने वाला कृष्ण? कंस, शिशुपाल, शाल्व, जरासन्धादि अत्याचारी आसुर वृत्ति के व्यक्तियों का विध्वंसक वीर कृष्ण चाहिए या कुब्जादासी और परस्त्रियों से समागम करने वाला कृष्ण? धर्म की रक्षा और अधर्म का नाश करने वाला कृष्ण चाहिये या माखन चोर कृष्ण? कंस और जरासन्ध जैसे दुष्टों का हनन करके उनके राज्यों को स्वयं न हड़पकर उन्हीं के परिवार के योग्य व्यक्तियों को सौंपकर त्याग वृत्ति का आदर्श प्रस्तुत करने वाला कृष्ण चाहिए अथवा गोपबालाओं के मक्खनादि छीनकर खाने वाला कृष्ण?

१९वीं शताब्दी में लगभग पांच हजार वर्षों के पश्चात् इस देश में एक ऐसा महान् आदर्श ऋषि पैदा हुआ, जिसने न केवल इस देश की मृततुल्य आर्यजाति को वेदामृतरूपी संजीवनी पिलाकर पुनर्जीवित किया, प्रत्युत इस देश की महान् वैदिक संस्कृति का रक्षक बनकर अवैदिक संस्कृति को देश से उखाड़ फेंका। उसी महामानव ने बहुत ही प्रखर बुद्धि से परख करके और वैदिक ज्ञान की स्वच्छ धारा में स्नान कराकर अज्ञान, मिथ्याज्ञान व भ्रान्तियों के दूषित मलों को दूर किया तथा हमारे गौरवपूर्ण अतीत इतिहास का भी स्मरण कराया। उसी सच्चे जौहरी ने हीरे के तुल्य उज्ज्वल श्रीकृष्ण के उदात्त चरित को पढ़कर सर्वप्रथम यह प्रमाणपत्र दिया—'**श्रीकृष्ण का गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। श्रीकृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा-इत्यादि।**' महर्षि के प्रमाणपत्र को पढ़कर ही प्रस्तुत 'योगेश्वर श्री कृष्ण' विशेषांक प्रकाशित करने की भावना प्रबल हुई और जब महाभारत को उठाकर देखा तो महर्षि के वचनों की यथार्थता के प्रति श्रद्धा और बढ़ गई। ऐसे आदर्श व निष्कलंक श्रीकृष्ण के

जीवन पर भी जो परवर्ती काल में ऋषियों के नाम लिखे भागवतादि ग्रन्थ हैं, उन्होंने मनमाने दोष लगाये हैं, यह बहुत आश्चर्य की बात है। महाभारत में, जो इस समय उपलब्ध है, यद्यपि उसमें स्थान-स्थान पर प्रक्षेप, परस्पर विरोधी कथन एवं असंगत बातें लिखी मिलती हैं, परन्तु उसमें श्रीकृष्ण का आदर्श-जीवन अब भी कलंकरहित ही मिलता है। महाभारत में वर्णित श्रीकृष्ण का उत्तमचरित ही जन-सामान्य के समक्ष रखना इस अंक का प्रमुख उद्देश्य है।

इस अंक के पाठकों ने यह प्रश्न भी किया है कि आपने अगस्त १९८५ में भी यह विशेषांक निकाला था, अब भी वही प्रकाशित कर रहे हो, इससे क्या लाभ है ? किसी ग्रन्थ विशेष पर विशेषांक निकालते तो अच्छा रहता। इसका समाधान यह है एक तो वह विशेषांक इतना जन-प्रिय हुआ, कि उसकी एक भी प्रति शेष नहीं रही और लोगों की मांग बनी रही, उसको पूर्ण करने के लिये यह दुबारा छापना पड़ा। द्वितीय संस्करण की अपनी अन्य विशेषता भी है। प्रथम संस्करण में विद्वानों के लेख ही थे। इसमें हमने श्रीकृष्ण का जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त का संक्षिप्त जीवनचरित भी देने का प्रयास किया है। तीसरी बात यह है कि महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ को हम इन छोटे-छोटे अंकों में कैसे भर सकते हैं ? हम उसे जितनी बार भी पढ़ते हैं, उतनी बार कुछ न कुछ नवीनता हमें मिलती है और पाठकों को भी अवश्य मिलेगी, ऐसी हमें आशा है।

आभार प्रदर्शन—इस अंक में जिन विद्वानों के खोजपूर्ण लेख छापे हैं, उनका हम हृदय से आभार मानते हुए उनके उत्तम स्वास्थ्य की कामना करते हैं। प्रभु उन्हें इसी प्रकार जनहित के कार्यों में शक्ति व साहस देते रहें। जीवन चरित के संग्रह में महाभारत का तो सहयोग पदेपदे लिया ही गया है, साथ ही श्री पं० चमूपति द्वारा लिखित योगेश्वर कृष्ण, श्री डा० भवानीलाल भारतीय द्वारा लिखित 'श्री कृष्ण चरित' और श्री प्रेमभिक्षु जी द्वारा लिखित 'शुद्धकृष्णायन' का पर्याप्त सहयोग लिया है, एतदर्थ मैं इन विद्वानों का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूं, उनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। साथ ही आर्ष-साहित्य प्रचार ट्रस्ट के अधि-कारियों का भी धन्यवाद करता हूं कि वे ऐसे जनहितैषी कार्यों पर न केवल आर्थिक ही, प्रत्युत सभी प्रकार का सहयोग देकर सदा ही मेरा उत्साहवर्धन करते रहते हैं। हमें आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि श्री कृष्ण के उत्तम चरित के उपासक व भक्त इस पुस्तक को हृदय

से पूर्व की भांति अपनायेंगे और श्री कृष्ण के उत्तमचरित को जन-जन तक पहुंचाने में पूर्ण सहयोग करते रहेंगे।

दिनांक : भाद्रपद कृष्णा
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
सं० २०४६ वि०
२४ अगस्त १९८९

विदुषामनुचर
राजवीर शास्त्री

शेरे पंजाब लाला लाजपतराय ने कहा है

"संसार में महापुरुषों पर उनके विरोधियों ने अत्याचार किए, परन्तु श्रीकृष्ण एक ऐसे महापुरुष हैं, जिन पर उनके भक्तों ने ही लांछन लगाये हैं।"

महाभारत की उपयोगिता

भारत देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है। इस देश का इतिहास यद्यपि काल की कुटिल गति के कारण अथवा विदेशी आक्रांताओं की दुरभिसन्धि के कारण ऐतिहासिक ग्रन्थ ही नहीं प्रत्युत प्राचीन समस्त वाङ्मय के प्रायः नष्ट-भ्रष्ट होने से हमें क्रमबद्ध नहीं मिलता। जिस देश व जाति का इतिहास गौरवमय होता है, वह देश व जाति गौरवपूर्ण इतिहास को पढ़कर कभी पराधीन नहीं रह सकती, अतः विदेशी आक्रान्ताओं ने इस देश के इतिहास व ऐतिहासक स्थानों को प्रायः नष्ट भ्रष्ट कर दिया, जिसके कारण ठीक ठाक इतिहास का ज्ञान करना अतीव दुष्कर कार्य है, पुनरपि इधर-उधर पुस्तकों में प्रसंगागत स्थलों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह देश विश्व में महान्, विश्व गुरु तथा ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र बनकर अवश्य रहा था। इस देश की संस्कृति व सभ्यता बहुत प्राचीन व गौरवमय रही थी।

आर्यावर्त्त के इतिहास में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम तथा योगेश्वर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, ये दो नाम नभ में जाज्वल्यमान नक्षत्रों की भाँति ऐसे अद्वितीय रत्न हैं, जिनका अनुकरणीय आदर्श जीवन धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों को युग-युगान्तर तक यावच्चन्द्र-दिवाकरौ पर्यन्त मार्गदर्शन, सत्प्रेरणा, जीवनज्योति तथा ज्ञान-ज्योत्सना देकर अनुप्राणित करता रहेगा। इन दोनों ही महापुरुषों ने अपने सच्चरित्र की अमिट छाप भारत देश में ही नहीं प्रत्युत विश्वजनीन जन-मानस पर ऐसी छोड़ी है कि जिनकी कथा प्राचीन होकर भी नवीनता को संजोये हुए विश्व के जन-जन में रंक से लेकर राजा तक सभी को अतिशय रुचिकर हो रही है और उनकी संजीवनी जीवनी-कथा देश काल व दिशाओं की सीमाओं का अतिक्रमण कर सार्वभौमिक बन गई है और अतीत में पराधीन भारत की जनता के लिए तो निराशाओं में आशा को प्रवाहित कर मृतप्राय जीवनों में अमृतवर्षा करती रही हैं तथा इस देश को पावन संस्कृति

का मूलस्रोत बनकर हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक समस्त देश को एकता व अखण्डता का पाठ पढ़ाती रही है।

इन दोनों ही महापुरुषों के जीवन का अनुशीलन करने से पता लगता है कि इनके जीवनों का उद्देश्य एक ही था—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अर्थात् दुर्जनों को दण्डित करके सज्जनों की रक्षा करना तथा धार्मिक मर्यादाओं को स्थापित करना। इसी लक्ष्य को लेकर दोनों ही महापुरुषों ने अपने अपने समय की विषम परिस्थितियों से संघर्ष करते अपने पुरुषार्थ, पराक्रम, नीति, ऊहा तथा ज्ञान के बल से अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त की। इतिहास के वेत्ताओं ने इन महापुरुषों की विशेषताओं को क्रमशः द्वादश कलावतार एवं षोडश कलावतार कहकर प्रकट किया है, जिसे हम छोटे बड़े के भाव से नहीं प्रत्युत सूर्यवंशी को सूर्य की बारह राशियों के कारण तथा चन्द्रवंशी श्रीकृष्ण को चन्द्रमा की सोलह कलाओं के कारण ही जान सकते हैं। श्रीराम के पावन आदर्श जीवन को यदि रामायण घोषित कर रही है तो योगेश्वर श्रीकृष्ण के कर्मठ जीवन को महाभारत ही घोषित करता रहेगा। महाभारत इतिहास की दृष्टि से ही नहीं श्रीकृष्ण की कुशल नीतियों, आध्यात्मिक उपदेशों, राष्ट्रीय धर्मों, वर्णाश्रम धर्मों, व्यक्तिगत व सामाजिक व्यवहारों के तत्त्वज्ञान का अद्वितीय ग्रन्थ है और कुछ तो महाभारत को पंचमवेद ही कहने लगे हैं। इन्डोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, इण्डोचीन आदि देशों में भी महाभारत की कथा भारत की तरह लोकप्रिय बनी हुई है। महाभारत के विषय में निम्न उक्ति तो यथार्थ चित्रण कर रही है—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥

अर्थात् मनुष्य जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) के विषय में जो कुछ महाभारत में है, वही अन्य ग्रन्थों में है और जो इसमें नहीं है तो फिर कहीं भी नहीं है। यद्यपि यह कथन अतिशयोक्ति से पूर्ण है पुनरपि कवियों की अतिशयोक्ति में बहुत कुछ सत्यता भी होती है।

महाभारत की ऐतिहासिकता

योगेश्वर श्रीकृष्ण द्वापर के अन्त में महाभारत के समय में हुए और उनके प्रामाणिक इतिहास का आधार भी महाभारत पुस्तक ही है। इसके अतिरिक्त यद्यपि श्रीकृष्ण का जीवन चरित्र हरिवंश, भागवत, विष्णुपुराण आदि में भी मिलता है, किन्तु ये ग्रन्थ अत्यन्त परवर्ती, काल्पनिक तथा श्रीकृष्ण के जीवन को दूषित करने वाले हैं, अतः प्रामाणिक नहीं हैं। वर्तमान युग के महान् सुधारक महर्षि दयानन्द ने सदाचार के धनी, वेद-वेदांगों के ज्ञाता, आदर्श साम्राज्य के निर्माता, शूरशिरोमणि योगेश्वर श्रीकृष्ण के विषय में बहुत ही यथार्थ लिखा है—

"श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुणधर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं।··· इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मत वाले भी कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?"

[स० प्र० ११ वां समुल्लास]

परन्तु आज के पाश्चात्य जगत् से प्रभावित तथा अपने इतिवृत्त से अनभिज्ञ तथाकथित कुछ ऐतिहासिक पुरुष महाभारत को काल्पनिक ग्रन्थ ही मानने व लिखने का साहस करने लगे हैं। यद्यपि अब भी महाभारतकालीन अवशेष जो अब चाहे खण्डरात के रूप में ही क्यों न हों, जैसे दिल्ली में पाण्डवों का किला, मेरठ में हस्तिनापुर, वरनाये [मेरठ] में लाक्षागृह, कुरुक्षेत्र में युद्धकालीन विभिन्न स्मृति चिह्न अब भी उपलब्ध होते हैं और भारतीय साहित्य तो महाभारत की घटनाओं तथा श्रीकृष्ण की जीवन गाथाओं से ओतप्रोत मिलता है, पुनरपि परमुखापेक्षी मानस्वरूप में सर्वथा परतन्त्र वने भारतीय लोग भी जव सच्चाई को स्वीकार करने में आनाकानी करते हैं, तब बहुत ही आश्चर्यजनक लगता है।

महाभारत का स्वरूप—

वर्तमान में उपलब्ध महाभारत का पोथा एक गदहे का भार जितना मिलता है किन्तु इसका यह विशाल रूप बीच-बीच के प्रक्षेपों के कारण हुआ है महर्षि दयानन्द इसके स्वरूप के विषय में लिखते हैं—"राजा भोज के बनाये सजीवनी नामक इतिहास में·····स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने चार सहस्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पाँच सहस्र छः सौ श्लोक युक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण से भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय पच्चीस और अब मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊंट का बोझा हो जाएगा।"

(स० प्र० एकादशसमुल्लास)

इस प्रमाण से यह तो स्पष्ट है कि महाभारत में समय-समय पर प्रक्षेप होते रहे हैं, किन्तु यह सर्वथा काल्पनिक नहीं है। आर्यजगत् के माननीय विद्वान श्री क्षितीश वेदालंकार ने उपर्युक्त तथ्य को ही प्रकारान्तर से स्पष्ट करते हुए लिखा है—"महर्षि व्यास ने जो ग्रन्थ सुगुम्फित किया था, उसका नाम जय था और उसमें केवल आठ हजार श्लोक थे। उसके बाद उनकी शिष्य परम्परा में महर्षि वैशम्पायन ने इस ग्रन्थ का विस्तार करके इसके श्लोकों की संख्या तीन गुनी अर्थात् चौबीस हजार तक पहुंचा दी। "जय" नामक ग्रन्थ में यदि एक ही कुल की जय और पराजय पर ध्यान केन्द्रित किया गया था तो वैशम्पायन के समय 'भरत' नाम से जो ग्रन्थ तैयार हुआ उसमें समूचे भारतवंश का इतिहास समाविष्ट हो गया। वैशम्पायन के पश्चात् उनके शिष्य परम्परा के सौति और लोमहर्षण ने इस ग्रन्थ का विस्तार करके इसकी संख्या एक लाख श्लोकों तक पहुंचा दी। तब इसका नाम 'महाभारत' पड़ा।" और महाभारत के आदि पर्व [१/१०२] में लिखा है—'चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारत संहिताम्।' इससे प्रतीत होता है कि व्यास जी ने २४ हजार श्लोक बनाये थे। ['योगेश्वर श्रीकृष्ण' से]

महाभारत काल निर्णय—

श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता 'महाभारत' की प्रामाणिकता पर ही निर्भर है, अतः महाभारत की ऐतिहासिकता पर विचार करना आवश्यक है। यद्यपि पाश्चात्य विद्वानों एवं उन्हीं का अनुगमन करने वाले भारतीयों

ने महाभारत में हुए परवर्ती प्रक्षेपों के कारण महाभारत को महत्त्व नहीं दिया है, किन्तु महाभारत में आये प्रक्षेपों के विकृत भाग को छोड़ने पर इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता पर सन्देह का अवसर नहीं रहता है। पाश्चात्य विद्वानों के वक्तव्य में पूर्वाग्रह तथा पूर्व निर्धारित धारणा भी विशेष कारण बनी है। जैसे – वेदों का रचनाकाल ३-४ हजार वर्ष पूर्व ही मानना, आर्यों का मूल निवास मध्य एशिया अथवा अन्यत्र मानना, आर्य सभ्यता को जंगलियों की सभ्यता बताना, आर्यों से पूर्व द्रविड जाति का भारत में निवास मानना, इत्यादि बातें उनके पूर्वाग्रहों को ही द्योतित करती हैं। और पाश्चात्य विद्वानों की महाभारत के विषय में कहीं बातें तथ्यविहीन हैं।

जैसे—[क] महाभारत कथा को उपन्यास मात्र मानना[वेवर, मोनियर, विलियम्स, ह्वीलर]

[ख] द्वारिका और हस्तिनापुर के मध्य १४०० मील का अन्तर कल्पित बताना।

(ग) चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में नियुक्त यूनानी राजदूत मेगास्थनीज द्वारा महाभारत का अपनी यात्रा पुस्तक में उल्लेख न करना। (जर्मन विद्वान् वेबर)

(घ) बौद्धशास्त्रों में श्रीकृष्ण का उल्लेख न होना (फ्रांसीसी विद्वान् बोसफ)

(ङ) 'अनासक्तियोग' नामक गुजराती भाष्य में—'महाभारत को अर्थों में मैं इतिहास नहीं मानता। गीता के कृष्ण मूर्त्तिमन्त शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान हैं, परन्तु काल्पनिक हैं। सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं। अवतार का आरोपण पीछे से किया गया है।' इसी प्रकार बालगंगाधर तिलक, रामकृष्णगोपाल भण्डारकर, महात्मा गांधी, डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र आदि विद्वानों की धारणायें भी पाश्चात्यों से प्रभावित रही हैं। परन्तु उनके विचारों पर शान्तबुद्धि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि ये धारणायें सर्वथा निर्मूल हैं। जैसे बंगाली साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र ने भारतीय साहित्य को वदनाम करने वाली पाश्चात्यों की बुरी प्रवृत्ति का भण्डाफोड़ करते हुए लिखा है—"संस्कृत साहित्य में विद्यमान भारत के गौरव की अभिवृद्धि करने वाली बातों को तो यूरोपीय विद्वान् कवियों की मिथ्या कल्पना या अलंकार योजना कहकर उड़ा देना चाहते हैं, परन्तु यदि इसी साहित्य में उन्हें कोई ऐसी बात दीख पड़े जो भारतवासियों को कलंकित करने वाली होती है तो वे उसकी सत्यता का डिंडिम-घोष करने

से नहीं चूकते। उदाहरणार्थ—भारत के पाण्डव जैसे वीर पुरुषों की कथा मिथ्या है और पाण्डव कवि की कल्पना मात्र हैं, परन्तु पाण्डव पत्नी द्रौपदी का पांच पतियों से विवाह होना सत्य है, क्योंकि इससे यह सिद्ध होता है कि पुराने भारतवासी असभ्य थे और उनमें स्त्रियों में बहुपतिविवाह प्रचलित था।"

और यूनानी राजदूत की भारत यात्रा के कतिपय प्रसंग ही कतिपय ग्रन्थों से लेकर छापे गये हैं, किन्तु मूल ग्रन्थ न मिलने से वेबर का कथन स्वयं कल्पित ही है। और अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी की भी मान्यता सम्भवतः अहिंसा के कारण बनी हो। इसीलिये उन्होंने महाभारत को अच्छी बुरी प्रवृत्तियों का द्वन्द्वयुद्ध मान लिया हो। परन्तु आगे कहे ऐतिहासिक तथ्यों से इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता को कदापि झुठलाया नहीं जा सकता।

महाभारत की ऐतिहासिकता में प्रमाण—(१) महर्षि-दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' में आर्यावर्त्तीय (महाभारत के परवर्त्ती) राजाओं की वंशावली, उनका राज्य शासनकाल (वर्षों व दिनों में) किन्हीं प्राचीन पत्रिकाओं के आधार पर लिखी हैं, जिसमें महाराज युधिष्ठिर से लेकर राजा यशपाल पर्यन्त (संवत् १२४९) राजाओं का वर्णन विद्यमान है और उसके बाद मुस्लिम शासकों का समय आ जाता है। इस प्रकार महाभारत से लेकर मुस्लिम काल तक के १२४ राजाओं के लगभग चार हजार एक सौ अठावन वर्षों का इतिहास 'महाभारत' को ऐतिहासिक सिद्ध करता है।

श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने स० प्र० में एक टिप्पणी देते हुए लिखा है—"कलिसंवत् का आरम्भ महाराजा युधिष्ठिर के राज्य के अन्त में श्रीकृष्ण के स्वर्गवास के पश्चात् हुआ था। विक्रमसंवत् कलिसंवत् के ३०४४ के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। ये दोनों बातें भारतीय कालगणनानुसार सर्वसम्मत हैं। कलिसंवत् ३०४४ में वि० सं० १२४९ (महाराजा पृथ्वीराज पर्यन्त) जोड़ने पर ४२९३ वर्ष बनते हैं।

(३) महाभारत के प्रसिद्ध अनुसन्धानकर्त्ता रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य ने "महाभारत-मीमांसा" नामक पुस्तक में पाश्चात्य विद्वानों की कल्पनाओं का सप्रमाण खण्डन करते हुए महाभारत की ऐतिहासिकता सिद्ध की है।

---

१. श्री डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा लिखित 'श्रीकृष्णचरित' से।

(४) भारतीय वाङ्मय की प्रसिद्ध तथा प्रामाणिक पुस्तकों के उद्धरण

(१) **पाणिनीय अष्टाध्यायी**— महर्षि पाणिनि के समय महाभारतकालीन व्यक्तियों (पात्रों) का ज्ञान था। पाणिनि का समय ईसा से एक हजार वर्ष से २००० हजार वर्ष पूर्व तक माना गया है। पाणिनि के निम्न सूत्रों में महाभारत सम्बन्धी संकेत मिलते हैं—

गवियुधिभ्यां स्थिरः (अ० ८।३।९५) में युधिष्ठिर शब्द
स्त्रियामवन्तिकुन्ति कुरुभ्यश्च (अ० ४।१।१७४) में कुन्ती शब्द
वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् (अ० ४।३।९८) में वासुदेव और अर्जुन
महान् व्रीह्यपराह्ण (अ० ६।२।३८) में 'भारत' शब्द तथा
गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो० (अ० ४।३।९९) के उदाहरणों में नाकुलक ? साहदेवक इत्यादि महाभारतकालीन शब्दों की प्रसिद्धि मिलती है।

(२) **व्याकरण-महाभाष्य** — पाणिनीय अष्टाध्यायी पर महर्षि पतञ्जलि ने 'महाभाष्यम्' ग्रन्थ लिखा है। इसमें महाभारत के उद्धरणों, पात्रों व घटनाओं का पुनः पुनः उल्लेख मिलता है। जैसे—

(क) जघान कंसं किल वासुदेवः। असाधुर्मातुले कृष्णः। संकर्षण-द्वितीयस्य बलं कृष्णस्य वर्धताम्। अक्रूरवर्ग्यः। अक्रूरवर्गीणः। वासुदेव-वर्ग्यः। वासुदेववर्गीणः। इत्यादि स्थलों पर महाभारतकालीन व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है।

छान्दोग्योपनिषद्— उपनिषदों का समय तो पाणिनि मुनि से भी प्राचीन है। छान्दोग्य-उपनिषद्[1] में देवकीपुत्र श्रीकृष्ण तथा उनके गुरु घोर आंगिरस का उल्लेख मिलता है—

अथैतद् घोर-आंगिरस कृष्णाय देवकीपुत्राय उक्त्वा उवाच।

(छान्दो० ३।१६।६)

---

१. छान्दोग्योपनिषद् शतपथ ब्राह्मण के समकालीन है। और शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—'कृत्तिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्ये न च्यवन्ते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्ये दिशश्च्यवन्ते।' अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र में अग्नि का आधान करे। यह नक्षत्र पूर्व दिशा में च्युन नहीं होता, अन्य होते हैं। भारतीय ज्योतिष के अनुसार यह स्थिति ईसा से ३००० वर्ष पूर्व थी। अतः छान्दोग्य में कहे श्री कृष्ण का समय भी ईसा से ३००० वर्ष से भी अधिक पूर्व बनता है।

यहाँ महाभारतकालीन देवकीपुत्र श्रीकृष्ण का ही वर्णन किया गया है।

(५) यूनानी यात्री मेगास्थनीज ने अपनी भारतयात्रा प्रसंगों में भारतीय नामों को अपने ढंग से लिखा है—'मथुरा में शौरसेनी लोग रहते हैं और वे हिरावलीज की पूजा करते हैं। यह हिरावलीज शब्द श्रीकृष्ण के लिये ही प्रयोग किया गया है। और यवनयात्री उस समय की साक्षियों के आधार पर लिखता है कि वह (श्रीकृष्ण) डायोनिसियस से १५ पीढ़ियाँ पीछे हुए। डायोनिसियस से चन्द्रगुप्त तक (जिसके यहां वह दूत बनकर आया था) १५३ पीढ़ियों का अन्तर है। अर्थात् श्रीकृष्ण चन्द्रगुप्त से १५३—१५=१३८ पीढ़ी पूर्व हुए। ऐतिहासिकों की परम्परा के अनुसार बीस वर्ष की एक पीढ़ी मानी जाये तो १३८×२०=२७६० वर्ष (श्रीकृष्ण से चन्द्रगुप्त तक) होते हैं और चन्द्रगुप्त ईसा से ३१२ वर्ष पूर्व हुए हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण को आज १९८९ ई० में निम्नलिखित वर्ष हुए हैं—

चन्द्रगुप्त से पूर्व वर्ष —	२७६०
चन्द्रगुप्त से ईसा तक वर्ष —	३१२
आज ईस्वी सन् —	१९८९
योग —	५०६१ वर्ष

(६) राजतरङ्गिणीकार कल्हण की मान्यता—संस्कृत वाङ्मय में राजतरङ्गिणी एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ है। उसमें लिखा है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ
षड्द्विक पंचद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ (राज० १।५६)

अर्थात् (अंकानां वामतो गतिः) नियमानुसार युधिष्ठिर का समय शककाल में २५२६ वर्ष मिलाने से निकलता है। शाक्यमुनि बुद्ध का अब संवत् २५६३ है। इस गणना से २५२६+२५६३=५०८९ वर्ष पूर्व बनता है। और दूसरे स्थान पर लिखा है-

भारतं द्वापरान्तेऽभूत् ॥ (राज० १।४९)
अर्थात् महाभारत का युद्ध द्वापर के अन्त में हुआ था।

(७) महाभारत की अन्तःसाक्षी—

(क) शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव !
प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥

निवृत्तमात्रे त्वयनमुत्तरे वै दिवाकरे ।
समावेशयदात्मानमात्मन्येव समाहितः ।। (शान्ति पर्व ४७।३४)

अर्थात् वैशम्पायन जनमेजय से कहते हैं--हे राजन् ! जब दक्षिणायन समाप्त हो गया और सूर्य उत्तरायण में आ गया, तब माघ मास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में मध्याह्न के समय भीष्म पितामह ने ध्यानमग्न होकर अपने आत्मा को परमात्मा में लगाया। ज्योतिष की गणनानुसार नक्षत्रों की यह स्थिति ईसा से ३१३९ वर्ष पूर्व ही हो सकती थी ।

(ख) एतत् कलियुगं नामाचिराद् यत् प्रवर्त्तते।। (वनपर्व) भीम-मारुति-संवाद में यह बात कही गई है कि कुछ वर्षों के बाद ही कलियुग का प्रारम्भ हो जायेगा ।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि महाभारत एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है और श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक व्यक्ति है और पाश्चात्य विद्वानों की बातें इस विषय में काल्पनिक एवं पूर्वाग्रहग्रस्त हैं ।

(८) यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगम् ।। (विष्णुपुराण० ४।२४।४०)

अर्थात् श्रीकृष्ण की मृत्यु दिन से ही कलियुग प्रारम्भ हुआ है। जिसे आज ५०८९ वर्ष होते हैं। और श्रीकृष्ण महाभारतयुद्ध के बाद ३६ वर्ष जीवित रहे हैं, ऐसा माना जाता है।

(९) अकबर बादशाह के समय में भी इस पर विचार किया गया और आईने अकबरी के २९९ पृ० (कलकत्ता में सन् १८६७ ई. में छपा है।) लिखा है- "कलियुग के लगते ही पहला राजा युधिष्ठिर हुआ था। विक्रम संवत् के प्रारम्भ होने तक युधिष्ठिर को हुए ३०४४ वर्ष व्यतीत हो चुकेथे।" आज वि. सं० २०४६ में ३०४४ वर्ष जोड़ने पर ५०९० वर्ष महाभारत को होते हैं।

श्री डा. हैडगेवार, संचालक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, के विचार--

"श्रीकृष्ण के समान पूर्ण पुरुष को ईश्वर अथवा अवतार की श्रेणी में ढकेल कर हम ऐसी धारणा कर लेते हैं कि उनके गुणों का अनुशीलन हमारी शक्ति के परे है"

श्रीकृष्ण का वंश परिचय

श्रीकृष्ण यदुवंशी थे। भागवत पुराण के अनुसार महाराजा यदु ययाति के पुत्र थे। ययाति के पूर्वज कुछ राजाओं के नाम इस प्रकार मिलते हैं—अग्नि का पुत्र चन्द्र, चन्द्र का पुत्र बुध, बुध का पुत्र इला, इला का पुत्र पुरुनवा, पुरुरवा का पुत्र आयु, आयु का पुत्र नहुष, और नहुष, नहुष का पुत्र ययाति। इन राजाओं में एक राजा चन्द्र भी हुआ, इसलिये ये चन्द्रवंशी कहलाये।

महाराजा ययाति की दो रानियाँ थीं—१. शर्मिष्ठा और २. देवयानी शर्मिष्ठा से द्रुह्य, अनु और पुरु पैदा हुए और देवयानी से यदु और तुर्वसु। इनमें पुरु के वंश में दुष्यन्त, भरत, कुरु आदि राजा उत्पन्न हुए। युधिष्ठिर आदि कौरव इसी वंश में उत्पन्न हुए और यदु की सन्तान यादव कहलायी। यदु वंश में एक राजा मधु हुए, जिसके कारण यदु-वंशी माधव भी कहलाने लगे। एक प्रकार से यादव व माधव कालान्तर में एक ही वंश के नाम प्रसिद्ध हो गये।

यदुवंशी राजाओं के दो उपवंश चले—वृष्णि और भोज श्रीकृष्ण वृष्णियों में होने से वार्ष्णेय कहलाये। श्रीकृष्ण के दादा का नाम शूर था, शूर का बड़ा लड़का वसुदेव था और वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण थे। दूसरे उपवंश भोज के फिर दो भेद हुए एक कुकुर और दूसरे अन्धक। श्रीकृष्ण की माता देवकी कुकुर वंश की थी। यादव कुल का राज्य उस समय कुकुर राजाओं के हाथ में था। माता देवकी के पिता देवक थे और देवक के भाई उग्रसेन यादवों की राजधानी मथुरा के राजा थे। राजा उग्रसेन का पुत्र कंस था, जो बुरे स्वभाव का था, अतः वह अपने पिता को कारागार में डालकर स्वयं राजा बन गया।

यादवों की राज्य पद्धति संघ के ढंग की थी। ये किसी भी एक राजा की आज्ञा से चलते थे, किन्तु सभी को राज्य के कार्यों में निर्णय देने का पूर्ण अधिकार होता था। जिस समय उग्रसेन राजा थे, उस समय

ही यादवों में परस्पर कुछ मतभेद पैदा हो गये थे। उग्रसेन के पिता आहुक और वृष्णिकुल के अक्रूर में आपस में बहुत मतभेद हो गया था। श्रीकृष्ण अपने जीवन काल में इन दोनों दलों में बीच-बचाव करके एकता बनाने का प्रयास करते रहते थे।

श्रीकृष्ण जिस वृष्णियों के वंश में पैदा हुए, उसकी कुल परम्परा से कुछ विशेषताओं का वर्णन महाभारत में कहीं-कहीं मिलता है, उससे उनके वंश की अनेक विशेषतायें हमें मिलती हैं ? जैसे द्रोण पर्व (४४। २४-२८) में लिखा है—

"ये कृष्णीवंशी सदा वृद्धों की आज्ञा में चलते हैं। अपने भाइयों का अपमान कभी नहीं करते। ब्राह्मण, गुरु और सजातीयजनों के धनों के प्रति अहिंसा-भाव रखते हैं। धनवान होकर भी अभिमान रहित होते हैं। परमेश्वर के भक्त तथा सत्यवादी होते हैं। ये सदा समर्थों का सम्मान करके भी दीनों के सहायक रहते हैं। और आत्मश्लाधा न करते हुए सदा संयमी एवं दानशील रहते हैं। इसलिये वृष्णि-वंशी वीरों का राज्य नष्ट नहीं होता है।"

और श्रीकृष्ण के सुपुत्र प्रद्युम्न ने भी वन पर्व (१८।१३-१४) में राजा शाल्व के साथ युद्ध करते हुए अपने सारथी दारूक से वृष्णी वंशियों की विशेषतायें बताते हुए कहा था—

जो युद्ध के मैदान में पीठ दिखाये, वह वृष्णी वंश में पैदा नहीं हुआ। और जो युद्ध गिरे हुए पर, शरणागत पर, बूढ़े पर, रथ या शस्त्रविहीन पर प्रहार करे, वह वृष्णी वंश का नहीं हो सकता।

श्रीकृष्ण का जन्म

ऐसे श्रेष्ठ वृष्णिवंश में हमारे चरित्रनायक का जन्म आज से पांच हजार दो सौ पन्दरह (५२१५) वर्ष पूर्व भाद्रपदमास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन, रोहिणी नक्षत्र में उस समय हुआ, जब कि वर्षा ऋतु होने से आकाश मेघाच्छन्न तथा घोर विद्युत् गर्जना हो रही थी। पुराणों में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—वसुदेव और देवकी जब विवाह के पश्चात् लौट रहे थे और देवकी का चचेरा भाई कंस प्रेमवश स्वयं रथ चला रहा था। उस समय यह आकाशवाणी हुई कि—"मूर्ख कंस ! तू जिसे रथ में बैठाकर लिये जा रहा है, उसी के आठवें गर्भ से उत्पन्न पुत्र तुझे

मारेगा।" आकाशवाणी को सुनते ही कंस क्रोध में होकर देवकी को तलवार खींचकर मारने लगा। वसुदेव ने कंस को समझाया कि वह क्रोधवश होकर निर्दोष देवकी को न मारें। देवकी से उत्पन्न सभी बच्चों को जन्म के पश्चात् ही तुम्हें सौंप दिया करेंगे। कंस को इतने पर भी संतोष नहीं हुआ और उसने वसुदेव व देवकी को अपने कारागार में डाल दिया। क्रमशः देवकी से छः सन्तानें हुई जो पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार कंस को सौंपी गई। निर्दयी तथा मृत्यु के दुःख से त्रस्त कंस सभी पुत्रों का निर्दयता से मारता रहा। सातवीं सन्तान गर्भ में ही नष्ट हो गई थी। माता देवकी ने आठवीं सन्तान (श्रीकृष्ण) को आधी रात के समय में जब जन्म दिया, तो उसकी सुरक्षार्थ वसुदेव रात्रि में ही यमुना के दूसरे किनारे गोकुल में बाबा नन्द के घर ले गये और उनकी सद्योजात पुत्री को लाकर देवकी के पास सुला दिया। यह सब घटना अतिशय चमत्कारिक ढंग से पुराणों में वर्णन की गई है। दूसरे दिन प्रातः ही देवकी से उत्पन्न कन्या का समाचार कंस को मिला और कंस ने देवकी को करुणाभरी बातों को अनसुनी करके उसे भी पत्थर पर पटककर बड़ी निर्दयता से मार दिया।

उपर्युक्त श्रीकृष्ण के जन्म के समय का वर्णन क्योंकि महाभारत में नहीं मिलता है, अतः पुराणों के आश्रय से लिखा गया है।

श्रीकृष्ण के शैशवकाल की घटनायें

दैवयोग से जन्म के पश्चात् ही श्रीकृष्ण मथुरा से गोकुल पहुँचा दिये गये। किंवदन्ती के अनुसार ऐसा कहा जाता है जिस समय कंस वसुदेव की आठवीं सन्तान का मारने लगा था, तब देवकी ने कंस से बच्ची को न मारने के लिये बहुत आग्रह किया था, किन्तु बार-बार कहने पर भी जब वह नहीं माना तो देवकी ने उससे यह बात कही कि—दुष्ट कंस! तेरी मृत्यु सन्निकट आ गई है। तुझे मारने वाला पैदा हो गया है। कहीं इस बात को अलौकिक बनाने के लिये आठवीं कन्या के द्वारा ही आकाश में जाकर यह बात कहलवाई गई है। कंस अपनी मृत्यु की बात सुनकर भयभीत हो गया और सुबह ही मन्त्रियों से मन्त्रणा करने लगा। कंस के मन्त्री भी कंस जैसे ही निर्दयी थे। उन्होंने कंस को सलाह दी—राजन्! आप चिन्ता न करें। हम ऐसी व्यवस्था करा देते हैं कि राज्य में १०-१५ दिनों में जितने भी बच्चे पैदा हुए हैं, सभी को मरवा देते हैं। इसी उद्देश्य से पूतना जैसी राक्षसी या राक्षसों को गुप्तवेश में राज्य में भेजा गया।

इधर गोकुल में माता यशोदा के पुत्र पैदा हुआ है, इसलिये चारों तरफ खुशियां मनायी जा रही थीं। इससे कुछ दिन पूर्व ही माता रोहिणी से बलराम ने जन्म लिया था। दोनों बच्चों का पालन व संरक्षण बहुत सतर्कता से किया जाने लगा। जन्म से दशवें दिन दोनों बच्चों का नामकरण संस्कार कराया गया।

पूतनावध—

एक दिन दोनों बच्चों की देखभाल का कार्य दूसरों को सौंपकर बाबा नन्द गोकुल से मथुरा में कंस का वार्षिक कर देने के लिये चले गये। इनके पीछे पूतना राक्षसी गोकुल में भेष बदलकर आ गई। सुन्दर व अलंकृत होने से पूतना न समझने के कारण घर में आने से किसी ने उसे रोका नहीं या कोई ध्यान नहीं दिया। इसी बीच पूतना ने पलने में सोये श्रीकृष्ण को गोद में लेकर दूध पिलाने का प्रयास किया। पूतना ने अपने स्तनों पर या तो भयंकर विष का लेप कर रखा था अथवा उसके दूध पीने से ही बच्चे जीवित नहीं रहते थे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इस लोकोक्ति के अनुसार श्रीकृष्ण या तो पूतना के छल को समझ गये अथवा बालभाव से पूतना के स्तनों को मुंह में दबाकर ऐसा खींचा कि प्रबल रक्तस्राव होने से पूतना के प्राण ही निकल गये। इस पूतनावध का वर्णन महाभारत में भी आता है—

पूतनाघातपूर्वाणि कर्माण्यस्य विशेषतः
त्वया कीर्त्तयतास्माकं भूयः प्रव्यथितं मनः ।।सभापर्व ४१।४।।

यह बात शिशुपाल ने श्रीकृष्ण पर दोषारोपण करते हुए कही थी। किन्तु भागवतकार ने पूतना का छः कोस का शरीर लिखा है, जिसका खण्डन करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"यदि पूतना का शरीर वास्तव में इतना बड़ा होता तो मथरा और गोकुल दोनों दबकर पोप जी का घर भी दब गया होता।" (स० प्र० ११ वाँ समु०)

शकट-भंजन—महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के अवसर पर श्रीकृष्ण के सम्मान की बात जब आई तो शिशुपाल को अच्छी नहीं लगी और उसने श्रीकृष्ण पर तरह-तरह के दोष लगाये। उनमें ही एक यह है—

चेतना-रहितं काष्ठं यद्यनेन निपातितम्।
पादेन शकटं भीष्म तत्र किं कृतमद्भुतम् ।। (सभा० ४१।८)

अर्थात् यदि श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल में अचेतन लकड़ी की गाड़ी को

गिरा दिया, तो हे भीष्म! इसमें क्या विचित्र बात हुई ? इसी घटना को भागवतकार ने इस प्रकार लिखा है—एक बार एक शकट (छकड़े) के नीचे श्रीकृष्ण को यशोदा ने सुला दिया। श्रीकृष्ण के लात मारने से वह छकड़ा उलट गया और कंस का भेजा हुआ शकटासुर नामक राक्षस मर गया। तथा छकड़े में रखा दूध दही चारों ओर बह गया। यथार्थ में एक टूटा हुआ शकट किसी के सहारे खड़ा कर रखा या। श्रीकृष्ण के लुढ़काने अथवा पैर चलाने से ही वह शकट गिर गया। किन्तु सारे गोकुल में इसकी चर्चा खूब फैल गई थी।

भागवतकार ने तृणावर्त्त राक्षस द्वारा श्रीकृष्ण को लेकर उठाने की घटना, यशोदाजी द्वारा श्रीकृष्ण को ऊखल से बांधना, इत्यादि घटनायें भी लिखी हैं, किन्तु उनका मूल महाभारत में नहीं है। श्रीकृष्ण और बलराम क्रम से बड़े हो गये और गोप-बालकों के साथ खेलने कूदने लगे। मल्ल-युद्ध का अभ्यास भी करने लगे। गोकुल में कंस द्वारा भेजे विभिन्न प्रकार के राक्षसों द्वारा तो उत्पात मचाये ही जा रहे थे। हरिवंश पुराण में भी भेड़ियों का उत्पात भी लिखा है। उस समय बाबा नन्द अपने समस्त परिवार, एवं गोकुल निवासियों को साथ लेकर गोवर्धन पर्वत की ओर वहीं वृन्दावन में रहने लगे। किन्तु कंस के भेजे राक्षसों ने वहां भी शान्ति से नहीं रहने दिया।

वृन्दावन निवासकालीन घटनायें—

भागवतपुराण के अनुसार यहाँ आकर श्रीकृष्ण ने वत्सासुर, बकासुर, अघासुर इत्यादि राक्षसों का वध किया। ये राक्षस पक्षी या सर्प का रूप बनाकर यहाँ आते रहते थे। कुछ भी हो, पर यह तो सत्य है कि कंस के द्वारा भेजे राक्षस अवश्य तरह-तरह का उत्पात मचाते रहते थे और श्रीकृष्ण अपने बालमित्रों के साथ उन सभी को भगाते अथवा मार डालते थे। कहते हैं एक बार एक बैल पागल हो गया और सभी लोग उससे परेशान हो गये। गरीब ग्वाले तो उससे बहुत ही दुःखी हो गये। क्योंकि गायें चराते समय वह जंगल में ग्वालों को बहुत ही परेशान करता था। श्रीकृष्ण ने अपने बाल ग्वालों को साथ में लेकर पहले उसे चारों तरफ से घेर लिया और दौड़ा-दौड़ाकर खूब थका दिया तत्पश्चात् उसके सींग पकड़कर नीचे गिरा दिया और उसे मार दिया। इस पगले बैल का नाम अरिष्ट आता है। इसी प्रसिद्ध घटना को लेकर शिशुपाल ने श्रीकृष्ण पर 'गोघ्नः स्त्रीघ्नश्च सन्' (सभा० ४१।१६) कहकर दोषारोपण किया है।

इसी प्रकार केशी नामक जंगली घोड़े को उत्पात करने के कारण श्रीकृष्ण ने मारा था। जंगली गधों को भी भगाकर ग्वालों के लिये वह स्थान निरुपद्रव किया था। इस प्रकार जन हितैषी कार्यों से बालक श्रीकृष्ण की ख्याति चारों तरफ फैलने लगी।

पुराणकार ने यहाँ 'कालिय-दमन' की घटना भी लिखी है, किन्तु महाभारत में उसका कहीं भी उलेख नहीं है।

इन्द्र-यज्ञ न करके गोवर्धनयज्ञ—

गोप-गण प्रतिवर्ष परम्परा से होने वाले इन्द्र-यज्ञ करते थे, जिसका उद्देश्य कृषि के लिये वृष्टि कराना होता था। इस इन्द्र यज्ञ का अवसर आने पर श्रीकृष्ण ने गोपों को समझाया कि अब हमें इस इन्द्रयज्ञ (कृषि के लिये) से क्या लाभ है ? हमारी आजीविका का अब गायें और गोवर्धन पर्वत ही साधन है गोवर्धन पर्वत पर पर्याप्त गायों के लिये घास पैदा होती है, जिसे खाकर गायें दूध देती हैं। अतः गोवर्धन पर ही एक सामूहिक यज्ञ किया जाये और विशाल उत्सव क्रीडा प्रतियोगिता प्रीतिभोज आदि का आयोजन किया जाये। ग्वालों ने श्रीकृष्ण की बात मान ली और उस यज्ञ का ऋत्विक् भी श्रीकृष्ण को बनाया गया। गायों व बछड़ों को खूब सजाया गया। बाल ग्वालों ने बड़ी रुचि से खेलों में भाग लिया। इसी अवसर पर सात दिन तक वृन्दावन में अतिवृष्टि हो गई। नदी, नाले सब चढ़ गये। चारों तरफ पानी ही पानी दिखाई देने लगा। यमुना में इतनी अधिक बाढ़ आ गई कि यमुना के निकटवर्ती ग्रामों व बस्तियों में रहना बहुत ही कठिन हो गया। श्रीकृष्ण ने अपनी बाल सेना के सहयोग से गोवर्धन पर्वत पर वृक्षादि को काटकर और हिंस्र जीवों को भगाकर समस्त लोगों को गोवर्धन पर बसाया और उनके खाने पीने की व सुरक्षा की समस्त व्यवस्था की। श्रीकृष्ण रातदिन एक करके बहुत ही परिश्रम से गोवर्धन पर आये लोगों की व्यवस्था में लगे रहे, यही श्रीकृष्ण का गोवर्धन पर्वत को उठाना कहा जाने लगा। वर्षा के पश्चात् बाढ़ का पानी कम होने पर सभी लोग श्रीकृष्ण का हृदय से धन्यवाद करते हुए अपने-अपने घरों पर चले गये।

गोवर्धन की इसी घटना को चमत्कारिक रूप पुराणों में दिया गया है। इन्द्र-यज्ञ न करने से इन्द्र का कुपित होकर अतिवृष्टि करना, श्रीकृष्ण का गोवर्धन पर्वत को हाथ में उठाना इत्यादि बातें बढ़ा-चढ़ाकर ही कल्पना का पुट देते हुए कही गई हैं अन्यथा इन्द्र का रुष्ट होना गोवर्धन पर्वत को

हाथ पर रखना आदि बातें असम्भव नहीं हैं। गोवर्धन यज्ञ की घटना पर ही आक्षेप करते हुए शिशुपाल कहता है—

वल्मीकमात्रः सप्ताहं यद्यनेन धृतोऽचलः।
तदा गोवर्धनो भीष्म न तच्चित्रं मतं मम॥ (सभा॰ ४१।९)

अर्थात् दीमक के टीले के समान गोवर्धन पर्वत को श्रीकृष्ण ने सात दिन थामे रखा, हे भीष्म ! मेरी दृष्टि में इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

गोपी-प्रसग व रासलीलायें मिथ्या हैं—

श्रीकृष्ण का गोपिकाओं से प्रेम का उल्लेख महाभारत में कहीं भी नहीं है, अतः स्पष्ट है कि महाभारत के बहुत बाद में बने पुराणों के लेखकों ने गोपी-प्रसंग की घटना सर्वथा काल्पनिक ही की है। यदि गोपी-प्रसंग में लेशमात्र भी सत्य होता तो राजसूययज्ञ के अवसर पर कुपित शिशुपाल अन्य दोषों के साथ यह दोष भी अवश्य लगाता। श्री पं॰ चमूपति जी ने 'योगेश्वर कृष्ण' पुस्तक में ठीक ही लिखा है—

"महाभारत में गोपोप्रेम की गन्ध भी नहीं है। और तो और किसी प्रसंग में भी कृष्ण की रासलीला का वर्णन नहीं। यहां तक कि महाभारत ने कृष्ण के होठों से वंशी तक न छुवाने की कसम खा ली है। 'महाभारत' का कृष्ण चक्रधर है, गदाधर है, असिधर है, मुरलीधर नहीं।"

अतः भागवत, विष्णुपुराण, हरिवंश पुराण और ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में जो गोपीप्रसंग हैं, रासलीलायें हैं, चीरहरणलीला है, सभी काल्पनिक होने से मिथ्या हैं और श्रीकृष्ण जैसे आप्त पुरुष पर मिथ्या कलंक लगाये गये हैं। महर्षि दयानन्द ने इस विषय में ठीक ही लिखा है—

"जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?" (स॰ प्र॰ ११वाँ समु॰)

राधा-कृष्ण का प्रसंग भी मिथ्या है—

पौराणिक जगत् तथा उनके वाङ्मय में राधाकृष्ण का विशिष्ट स्थान है। राधा को श्रीकृष्ण की प्रेयसी के रूप में चित्रित किया गया है। पौराणिक जगत् में राधा के बिना कृष्ण की कल्पना ही असम्भव है। श्रीकृष्णचरित के मुख्य उपसेव्य 'महाभारत' में तो क्या विष्णु तथा भागवत पुराणों में भी राधा का उल्लेख नहीं है। केवल अत्यन्त परवर्ती ब्रह्मवैवर्त्त-

पुराण में राधा का उल्लेख मिलता है। राधा न तो श्रीकृष्ण की पत्नी है और न ही प्रेयसी। श्रीकृष्ण का विवाह तो विदर्भराज भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी के साथ ही हुआ था। अतः रुक्मिणी ही एक विवाहित पत्नी थी।

कंस का वध और संघ की पुनः स्थापना

श्रीकृष्ण के भावी जीवन का प्रारम्भ कंस-वध से ही होता है। किन्तु कंस का वध करना सरल कार्य नहीं था। एक तो कंस मथुरा का स्वेच्छाचारी राजा था, दूसरे उसके ऊपर मगध-नरेश महाबलशाली जरासन्ध का वरदहस्त था। कंस जरासन्ध का जामाता था, उसकी अस्ति और प्राप्ति कन्याओं से कंस का विवाह हुआ था। दूसरी तरफ यादवों में परस्पर एकता का अभाव था। कंस का दादा आहुक और वृष्णी वंश में बड़े अक्रूर, ये दोनों अपने-अपने भिन्न-भिन्न दल बनाए हुए थे। कंस अपने गुप्तचरों से श्रीकृष्ण के बल पराक्रम के समाचारों से भली भांति परिचित रहता था। उसे स्वप्न में भी श्रीकृष्ण ही दिखाई देता था, इसलिये श्रीकृष्ण को मरवाने के लिये वह हर सम्भव उपाय करने को उद्यत था। यादव-वीरों पर वह विशेषदृष्टि रखता था और उनपर अत्याचारी ही नहीं, यथाशक्ति उन्हें कुचलने का प्रयास करता था।

जब कंस अपने भेजे नृशंस लोगों के द्वारा अथवा मायावी राक्षसों के द्वारा श्रीकृष्ण का वध नहीं करा सका, तो उसने मन्त्रियों से सलाह करके एक षड्यन्त्र रचा। देवर्षि नारद से कंस को यह भी पता लग गया था कि श्रीकृष्ण वसुदेव के ही पुत्र हैं। इधर कंस ने श्रीकृष्ण को मरवाने के लिये चाणूर, मुष्टिक जैसे पहलवानों को अपनी रक्षा के लिये रख छोड़ा था तो उधर श्रीकृष्ण और बलराम ने भी यह निर्णय कर लिया था कि जब तक कंस को नहीं मारा जाता, तब तक यादवों का संघराज्य स्थापित नहीं हो सकता। दोनों ओर से पूरी तैयारी हो रही थी। कंस ने अपने पहलवानों को विशेष निर्देश दे रखे थे कि वे किसी भी प्रकार से (छल या बल से) इन दोनों यादववीरों को समाप्त कर दे, जैसा कि एक श्लोक में वर्णन मिलता है—

> गोपालदारकौ प्राप्तौ भवद्भ्यां तौ ममाग्रतः।
> मल्लयुद्धे निहन्तव्यौ मम प्राणहरो हि तौ॥ (विष्णु० ५।२)

अपनी कुटिल नीति के अनुसार कंस ने एक धनुष-यज्ञ का आयोजन मथुरा में किया, जिसमें दूर-दूर से पहलवानों को बुलाया गया। यादव

अक्रूर को भेजकर कृष्ण और बलराम को भी मथुरा बुलाया गया। दोनों यादववीर अक्रूर के साथ मथुरा में बड़ी खुशी से आ गये। भागवतकार ने यहां कुब्जा-प्रसंग भी जोड़ दिया है, किन्तु वह अतिरंजित होने से यथार्थ और प्रसंगानुकूल नहीं लगता। कृष्ण और बलराम धनुष-यज्ञशाला में पहुँच जाते हैं, जहां बड़े-बड़े पहलवान पहले से ही उपस्थित थे। कंस एक ऊँचे सिंहासन पर बैठकर सब कुछ देख रहा था। भागवत के अनुसार धनुष यज्ञशाला में पहुँचने से पूर्व ही एक खूनी कुवलयापीड नामक हाथी कंस ने छोड़ रखा था, जो अवसर मिलने पर दोनों यादव वीरों को समाप्त कर दे। और अपने पहलवानों की शक्ति पर कंस को बड़ा अभिमान था। परन्तु तेजस्वी और उत्साही व्यक्तियों के सामने कौन सा कार्य असम्भव होता है! कहा भी है—

तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥

श्रीकृष्ण व बलराम दोनों ही मल्लविद्या में पूर्ण पंडित हो गये थे, उन्हें भी अपने बल पर पूरा भरोसा था। पहले मार्ग के कण्टक कुवलयापीड हाथी को परास्त किया और बाद में धनुष को तोड़कर अपनी वीरता का परिचय कराया। तत्पश्चात् कंस के नामी पहलवानों से दोनों वीर बालकों ने हाथ मिलाया। उस समय अपने संकल्प में सफलता देखकर कंस मन ही मन बहुत प्रसन्न हो रहा था, किन्तु उसे इन वीर-बालकों के बल का पूर्ण-परिचय नहीं हो पाया था। श्रीकृष्ण ने चाणूर को और बलराम ने मुष्टिक पहलवान को एक दो दांवों में ही पछाड़ दिया और खेल-खेल में ही चाणूर और मुष्टिक को मारकर विजयश्री की दुन्दुभी बजा दी। चारों तरफ बैठे दूर-दूर से आये पहलवान तथा दर्शक दोनों बालकों के इस अद्भुत कर्म को प्रशंसा करके करतलध्वनि करने लगे। यह देखकर कंस को अतीव पीड़ा हुई और उससे रहा न गया। कंस स्वयं जोश में आकर अखाड़े में आ धमका। श्रीकृष्ण तो यह चाह ही रहे थे, उन्होंने तुरन्त कंस को पकड़कर भूमि पर दे मारा और उसकी छाती पर बैठकर मुष्टि प्रहार करने लगे। यह देखकर कंस का भाई सुनामा दौड़कर कंस की सहायता के लिये आया, उसे बलराम ने पहले ही दबोच लिया। दोनों वीर बालकों ने यादवों पर चिरकाल से अत्याचार करने वाले कंस और सुनाम को यम-लोक का पथिक बना दिया।

श्रीकृष्ण इस दंगल के विजेता ही नहीं, प्रत्युत जनता पर किये जुल्मों व अत्याचारों को समाप्त करने वाले भी थे। उन्होंने कंस का

मुकुट उतरवाकर तुरन्त ही कारागार से कंस के पिता उग्रसेन तथा अपने माता-पिता को छुड़वाकर उग्रसेन को अपना राजा बनाया। महाभारत के सभापर्व में पूर्वोक्त वर्णन (सभा० अ० १३।३०-३४ में) इस प्रकार मिलता है—"श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के वध से पूर्व युधिष्ठिर के सम्मुख अपनी यह कथा इस प्रकार सुनाई थी—कुछ काल पश्चात् कंस ने यादवों को सताया और जरासन्ध की कन्याओं से अपना विवाह किया। जरासन्ध से सम्बन्ध स्थापित होने पर तो कंस ने बालाभिमान के कारण अपनी जाति वालों को तथा भोजवंशी वृद्ध राजाओं को खूब सताया। तब मैंने और भाई बलराम ने मिलकर कंस को मारा और अपने संघ का पुनरुद्धार किया।"

श्रीकृष्ण के जीवन की यह बहुत बड़ी प्रथम विजय थी और अधर्म-राज्य का नाश करके धर्म-राज्य स्थापना का भी यह पहला कदम था। श्रीकृष्ण चाहते तो स्वयं भी राजा बन सकते थे, किन्तु प्रजा के हित में प्रजा की इच्छा तथा संघ के नियमों के अनुकूल ही करना अच्छा समझा। यद्यपि कंस के अत्याचारों से प्रजा अत्यन्त पीड़ित थी, किन्तु अत्याचार का सामना करने से सभी घबराते थे। श्रीकृष्ण ने अपने जीवन के उद्देश्यानुसार ही (अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना करना) यह सब किया, अतः वे अपनी इस धर्मप्रियता के लिये प्रजा में अत्यधिक प्रशंसित हुए।

श्रीकृष्ण की शिक्षा-दीक्षा

कंस को मारकर संघ-राज्य की पुनः स्थापना के पश्चात् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई अवन्तिकापुरी, जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं, उसके निकट परमतपस्वी सान्दीपनि मुनि के गुरुकुल में पढ़ने के लिये गये। यह गुरुकुल शिक्षा की दृष्टि से उस समय बहुत प्रसिद्ध था, यहां दूर-दूर से विद्यार्थी पढ़ने के लिये आते थे। प्राचीन गुरुकुलों की व्यवस्था भी बहुत अच्छी होती थी। गुरुकुलों में गरीब व अमीर का कोई भेद नहीं होता था। पढ़ने वाले सभी विद्यार्थियों का सादा रहन-सहन, खाने-पीने में किसी प्रकार के भेद-भाव का न रखना, तपस्या का जीवन, प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक नियमित दिनचर्या का पालन करना, सभी विद्यार्थियों की समान वेशभूषा, ब्रह्मचर्य के कठोर व्रतों का पालन करना, मेखला, दण्ड धारण, मृगछाल आदि धारण करना, प्रातः सायं सन्ध्या-हवन करना, जूता-छत्रधारण न करना, शृंगार के सभी सामानों का त्याग रखना, भूमि पर शयन करना, इत्यादि गुरुकुल के नियमों का पालन सभी को समानता से करना पड़ता था। श्रीकृष्ण और बलराम ने भी यज्ञोपवीत संस्कार

पुरोहित गर्गाचार्य से कराकर गुरुकुल-पद्धति से ही अध्ययन किया। पठन काल में श्रीकृष्ण का व्यवहार बहुत ही विनम्र होने से सभी गुरुकुलवासी इनसे प्रसन्न रहते थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा के विषय में भागवतकार लिखता है—

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ।
गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ॥
(भाग० १० स्कन्ध)

प्रोवाच वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदो गुरुः।
सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा॥
तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधम्॥
(भाग० १०।४५।३३-३४)

अर्थात् श्रीकृष्ण और बलराम ने यदुकुल के पुरोहित गर्गाचार्य से यज्ञोपवीत संस्कार कराकर द्विजत्व प्राप्त किया और गायत्री मन्त्र की दीक्षा ली। तत्पश्चात् गुरुकुल में जाकर छः अंगों सहित चारों वेद, उपनिषद्, धनुर्वेद, चारों उपवेद, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, मीमांसा और छः भेदों सहित राजनीति शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया। महाभारत में यद्यपि शिक्षा का प्रसंग नहीं मिलता, पुनरपि राजसूययज्ञ के अवसर पर अग्रपूजा के लिये श्रीकृष्ण का नाम प्रस्तुत करते हुए भीष्मपितामह कहते हैं—

वेद-वेदाङ्ग-विज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥
(सभा० ३८।१९)

अर्थात् श्रीकृष्ण ज्ञान-विज्ञान तथा शस्त्रास्त्र विद्या में इतने निपुण हैं कि उनसे अधिक इस समय सम्पूर्ण पृथिवी पर दूसरा कोई नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि गुरुकुल में रहकर श्रीकृष्ण ने क्या-क्या विद्यायें पढ़ी थीं! परन्तु यहां भी पुराणकार चमत्कार दिखाये बिना नहीं रह सका और कल्पना की उठान में यह लिख दिया कि श्रीकृष्ण ने ६४ विद्यायें ६४ दिनों में ही पढ़ ली थीं। और विद्या समाप्ति के बाद जब गुरुदक्षिणा की बात आई तो श्रीकृष्ण ने गुरुजी को धनधान्य से तो सन्तुष्ट किया ही, साथ ही गुरु के मृतपुत्र को यमराज की नगरी से लाकर दिया। किन्तु ये बातें असम्भव और सृष्टिक्रम विरुद्ध होने से मान्य नहीं हो सकती। हाँ यह तो सम्भव है कि गुरुपुत्र का किसी ने अपहरण कर लिया हो और श्रीकृष्ण

से पता लगाकर और उन्हें दण्डित करके मृत्यु के मुख से गुरुपुत्र की रक्षा करके गुरुजी को प्रसन्न किया हो। और इसी घटना को पुराणकार ने चमत्कारिक रूप से लिख दिया हो किन्तु मृत्यु के बाद पुत्र का जीवित होकर आना कदापि सम्भव ही नहीं है।

जरासन्ध के आक्रमण और श्रीकृष्ण का द्वारिका प्रस्थान—

जरासन्ध मगध (बिहार) का राजा था। उसने बलपूर्वक अनेक राज्यों को अपने अधीन कर ८६ राजाओं को कारागार में डाल दिया था। अनेक राजाओं ने जरासन्ध की अधीनता कर देकर स्वीकार कर ली थी। अनेक मायावी बलवान् राजाओं ने उसका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था। युधिष्ठिर का मामा पुरुजित जरासन्ध का पक्षपाती था। अनेक राजवंशों ने जरासन्ध के भय से भागकर उत्तर भारत छोड़कर अन्यत्र शरण ले ली थी। यादव-संघ का राज्य भी अपनी दो कन्याओं (अस्ति और प्राप्ति) का विवाह कंस के साथ करके अपने अधीन ही कर लिया था। यादवकुल को पारस्परिक फूट ने भी अत्यधिक खोखला बना रखा था।

परन्तु श्रीकृष्ण के द्वारा कंस की मृत्यु का समाचार जब जरासन्ध को पता लगा और उसकी दोनों पुत्रियां रोती-पीटती घर पर आयीं तो उनका वैधव्यतावश करुण क्रन्दन जरासन्ध से नहीं देखा गया और एक बहुत बड़ी सेना को लेकर मथुरा पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि उसे अपनी सेना पर अत्यधिक अभिमान था, किन्तु श्रीकृष्ण की युद्धनीति और और अप्रतिहत तेज के कारण जरासन्ध को पराजित होकर भागना पड़ा। इस प्रकार जरासन्ध ने मथुरा पर बहुत बड़ी सेना के साथ सतरह बार आक्रमण किये किन्तु सफलता नहीं मिली। परन्तु (संग्रामे अष्टादशावरे० सभा० १४।४०) महाभारत के अनुसार जब अठारहवीं बार आक्रमण किया तो मथुरावासी एक नई विपत्ति से घिर गये थे। म्लेच्छ कालयवन नामक शक्तिशाली राजा ने मथुरा को चारों तरफ से घेर लिया था। ऐसी स्थिति में १८ हजार यादव सेना जरासन्ध और कालवयन की कई लाख सेना का प्रतिरोध कैसे और कब तक कर सकती थी। सभापर्व १४।३६ के अनुसार —

न हन्यामो वयं तस्य त्रिभिर्वर्षशतैर्बलम् ॥

अर्थात् श्रीकृष्ण ने यादवों से मन्त्रणा करते हुए कहा कि अब ऐसी स्थिति है कि हम तीन सौ वर्षों तक भी जरासन्ध की सेना को पराजित नहीं कर सकेंगे। इसलिये युद्ध नीति के अनुसार अपने तथा शत्रु के बलाबल को देखते हुए मथुरा को छोड़कर पश्चिम की ओर चल पड़े और कुछ

दिन प्रवर्षण-पर्वत पर रहकर पश्चिमी समुद्र के तट पर द्वारिका नगरी में दृढ़ दुर्ग बनाकर रहने लगे। श्रीकृष्ण का मथुरा से पलायन कूटनीतिज्ञ जरासन्ध को शक्ति को देखते हुए युद्धनीति के अनुकूल हो था। द्वारिका-नगरी, जिसके एक तरफ समुद्र और दूसरी ओर रेबतक पहाड़ था, शस्य-श्यामला भूमि थी। श्रीकृष्ण ने इस नगरी में इतना दृढ़ दुर्ग बनवाया जिसको जीतना सरल नहीं था। उसमें बैठकर थोड़े भी सैनिक शत्रु सेना के दाँत खट्टे कर सकते थे। श्रीकृष्ण की इस नीति का अनुमोदन महर्षि दयानन्द ने भी किया है—"कभी-कभी शत्रु को जीतने के लिये उनके सामने से छिप जाना उचित है। जैसे सिंह क्रोध से सामने आकर ·····
······भस्म हो जाता है, बैसे मूर्खता से नष्ट-भ्रष्ट न हो जावे।"

(स० प्र० ६ समु०)

इस मथुरा से पलायन और द्वारिका प्रस्थान की घटना का उल्लेख महाभारत के सभापर्व ४६वें अध्याय में किया गया है।

श्रीकृष्ण का विवाह—

द्वारिकापुरी में आकर बलराम का विवाह रैवतक राजा की पुत्री रेवती से हुआ। और विदर्भदेश के राजा भीष्मक ने अपनी पुत्री रुक्मिणी के स्वयंवर का आयोजन किया। भीष्मक एक शक्तिशालो राजा थे किन्तु उन्होंने जरासन्ध की अधीनता स्वीकार कर रखी थी। भीष्मक तथा उनका पुत्र रुक्मी रुक्मिणी का विवाह जरासन्ध के सेनापति तथा श्रीकृष्ण की फूफी के लड़के और चेदिराट् दमघोष के पुत्र शिशुपाल से करना चाहते थे किन्तु रुक्मिणी श्रीकृष्ण से विवाह करना चाहती थी। स्वयंवर में विभिन्न देशों के युवराजों को निमन्त्रित किया गया था किन्तु श्रीकृष्ण को नहीं बुलाया गया। रुक्मिणी ने अपना विवाह अपनी इच्छा के विरुद्ध होता देख कर एक वृद्ध ब्राह्मण के हाथ द्वारिकापुरी सन्देश भिजवाया कि मेरे माता-पिता मेरा विवाह शिशुपाल से करना चाहते हैं, मैं उसे बिल्कुल भी नहीं चाहती। मैं तो मन से आपको वर चुकी हूं। इसलिये सन्देश पाकर ही तुरन्त नगर से बाहर उद्यान में अवश्य आ जायें, मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगी।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी का सन्देश पाकर रथारूढ़ होकर विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर की ओर चल पड़े। इधर शिशुपाल को भी यह समाचार मिल गया था। वह भी रुक्मिणी-हरण के काण्ड को रोकने के लिये अपने मित्र राजाओं व सेना सहित कुण्डिनपुर पहुंच गया। नियत समय पर

रुक्मिणी नगर से बाहर उद्यान में भ्रमण के बहाने आ गई और श्रीकृष्ण उसे रथ में बैठाकर द्वारिका को चल दिये। शिशुपाल ने पीछे से श्रीकृष्ण पर हमला भी किया, किन्तु बलराम ने यादवदल के साथ शिशुपाल और उसकी सेना को बुरी तरह मार भगाया। द्वारिकापुरी में श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ विधिवत् विवाह करके अपनी पत्नी बनाया। क्योंकि यह विवाह कन्या की इच्छानुसार था, अतः अपहरण करते हुए भी राक्षस-विवाह के अन्तर्गत नहीं आता। क्योंकि राक्षस-विवाह में कन्या के विरुद्ध अपहरण किया जाता है। श्रीकृष्ण के रुक्मिणी के साथ विवाह की घटना का संकेत सभापर्व (४५।१५) में मिलता है। महाभारत में किसी भी स्थल पर श्रीकृष्ण के किसी दूसरे विवाह का संकेत नहीं मिलता, पुनरपि पौराणिकों ने मनमाने दोषों में भी श्रीकृष्ण पर बहुपत्नी होने का दोष लगाया है। यह एक दुर्भाग्य की ही बात है कि श्रीकृष्ण जैसे योगेश्वर आप्तपुरुष को भी बहुत पत्नियों वाला बनाकर दोषारोपण किया गया है।

श्रीकृष्ण की सन्तान—

उपर्युक्त श्रीकृष्ण की घटना से स्पष्ट होता है कि कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह एक हार्दिक प्रेम तथा गुण, कर्म, स्वभावानुसार था। अतः दोनों के संयोग से सन्तान भी उत्तम ही होनी थी। उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिये माता-पिता को उत्तम-विवाह के साथ अन्य भी प्रयास करने पड़ते हैं। महाभारत में श्रीकृष्ण ने उन प्रयासों का एक स्थान पर स्वयं ही कथन[1] किया है कि मैंने सपत्नीक हिमालय पर्वत पर जाकर बारह वर्ष तक (विवाह के बाद) घोर ब्रह्मचर्यव्रत का अनुष्ठान किया था। उसी तपस्या के अनुरूप सनत्कुमार के समान तेजस्वी प्रद्युम्न नामक पुत्र पैदा हुआ पिता और पुत्र में इतनी रूप, शीलादि में समानता थी कि अनेक बार तो पहचानने में लोगों को भ्रम ही हो जाता था। हमारे आदर्शपुरुष योगेश्वर कृष्ण कितने तपस्वी थे, कितने संयमी थे और कितने सदाचारी थे? यह इस घटना से बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाता है। ऐसे आप्तपुरुष को भी प्रमादी पौराणिकों ने वासना की दलदल में फंसाकर श्रीकृष्ण की १६ हजार रानियाँ मान लीं, यह कितने आश्चर्य की बात है?

---

१. ब्रह्मचर्यं महद्घोरं चीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
हिमवत् पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसार्जितः॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमार-तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥ (सौप्तिकपर्व अ० १२)

श्रीकृष्ण का पाण्डवों से मिलन और द्रौपदी का स्वयंवर

महाभारत में श्रीकृष्ण का पाण्डवों का मिलन सर्वप्रथम द्रौपदा स्वयंवर के अवसर पर होता है। पांचाल राज द्रुपद ने, अपनी पुत्री द्रौपदी, जिसका यज्ञ सेनी भी एक दूसरा नाम था, उसके स्वयंवर के अवसर पर देश-विदेश के राजाओं को निमन्त्रित किया हुआ था। श्रीकृष्ण भी इस अवसर पर पांचाल पहुंचे। राजा द्रुपद ने एक बड़ी कमान (धनुष) बनवा रखी थी, जिस पर प्रत्यञ्चा (चिल्ला) चढ़ाना अतीव दुष्कर कार्य था और आकाश में एक यन्त्र लगा दिया था। स्वयंवर की यह शर्त[1] थी कि जो कमान पर चिल्ला चढ़ाकर तीर से लक्ष्य को वेध देगा, वही द्रौपदी से विवाह कर सकेगा।

इधर ब्राह्मणवेष में पांचों पांण्डव स्वयंवर में पहुंचे हैं। पाण्डवों की प्रसंग प्राप्त पूर्व कथा इस प्रकार है—श्रीकृष्ण की एक फूफी थी पृथा। इसे बचपन में ही दादा शूर ने अपने मित्र कुन्ति भोज (मालवे का राजा, जिसके अपनी कोई सन्तान न थी) को दे दी थी। इस प्रकार पृथा भोज-राज कुन्ति की गोद ली कन्या थी। भोजराज ने पृथा का स्वयंवर रचा, जिसमें बलवान् पाण्डु ने जीतकर पृथा से विवाह किया। पाण्डु के भाई धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने मामा शकुनि के परामर्श से राज्य के लोभ में वारणावत में लाक्षागृह बनवाया और पाण्डवों को समाप्त करने का षड्यन्त्र किया। किन्तु विदुर की गुप्त नीति से सचेत होकर कुन्ती सहित पांचों पाण्डव लाक्षागृह से निकलकर जंगलों में छिपकर रहते रहे। द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार सुनकर पाण्डव भी ब्राह्मणवेष में ही स्वयंवर में पहुंचे थे।

स्वयंवर में आये हुए सभी राजकुमारों ने अपनी-अपनी शक्ति का परीक्षण किया, किन्तु सफलता तो बहुत दूर, घुटनों से ऊपर भी धनुष को नहीं उठा सके। वीर कर्ण ने धनुष को उठाया भी, किन्तु द्रौपदी ने सूत पुत्र कहकर विवाह करने से मना कर दिया। अन्त में ब्राह्मण वेष में अर्जुन ने धनुष उठाकर लक्ष्य साधा और तीर से लक्ष्य वेधकर द्रौपदी को जीता। द्रौपदी को ब्राह्मण कुमार ले जाये, यह सभी उपस्थित राजकुमारों

---

१. द्र० आदि पर्व १८७ श्लोक ११ में—
इदं सज्जं धनुः कृत्वा सज्जैरेभिश्च सायकैः।
अतीतलक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिति ॥

को सहन न हो सका और शोर मचाकर लड़ने को तैयार हो गये। इधर युद्ध का वातावरण देखकर भीम ने वृक्ष को उखाड़कर गदा बना ली और और युद्ध करने को तैयार हो गया।

इससे पूर्व श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को कभी देखा नहीं था, केवल उनकी पूर्व लिखित घटना को दूर से ही सुना था। लाक्षागृह-दाह के बाद पाण्डवों व कुन्ती का क्या हुआ, यह कुछ भी श्रीकृष्ण नहीं जानते थे। परन्तु अर्जुन का लक्ष्य वेध और भीम का वृक्ष की गदा बनाना देखकर श्रीकृष्ण अच्छी प्रकार समझ[1] गये कि ये अर्जुन और भीम ही हैं। और श्रीकृष्ण ने बलराम भाई से उनके विषय में जानकारी दी। और पाण्डवों को जीवित देखकर अतिशय प्रसन्नता भी प्रकट की। इसके पश्चात् अर्जुन से कर्ण ने और भीम से शल्य ने धनुर्विद्या और मल्लविद्या में दो-दो हाथ भी किये और पाण्डवों की धाक मानकर निस्तेज हो गये। श्रीकृष्ण ने फिर सभी राजकुमारों को[2] समझाया कि भाई ! इसमें लड़ने की क्या बात है ? यहाँ धर्म पूर्वक ब्राह्मण ने स्वयंवर जीता है। अत: उससे द्वेष करना ठीक नहीं। श्रीकृष्ण ने यहाँ होने वाले रक्तपात को रोककर शान्त किया, और अपने-अपने घर वापिस भेज दिया। श्रीकृष्ण का उपस्थित सभी राजाओं के हृदय में बड़ा सम्मान था, इसीलिये वे श्रीकृष्ण की बात को स्वीकार कर तुरन्त शान्त हो गये। श्रीकृष्ण की अर्जुन के साथ मित्रता का प्रारम्भ यहीं से हुआ। एक वीर का दूसरे की वीरता को देखकर प्रभावित होना स्वाभाविक भी होता है।

स्वयंवर के पश्चात् द्रौपदी सहित पाण्डव अपने निवास स्थान पर चले गये और पीछे-पीछे श्रीकृष्ण और बलराम भी पाण्डवों के पास गये। वहाँ परस्पर खुलकर वार्तालाप हुआ और कुशलक्षेम पूछकर अपनाअपना पूर्ण परिचय भी दिया। श्रीकृष्ण ने हँसते हुए कहा—गूढोऽग्निर्ज्ञायत एव राजन्। (आदि० १९०) अर्थात् अग्नि छिपने पर सर्वथा अज्ञात नहीं रह सकती। उसका पता लग ही जाता है। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध कराकर द्रौपदी के विधिवत् विवाह संस्कार की विधि भी कराई। ऐसी दुर्दशा दशा में आपत्तिग्रस्त मित्रों की सहायता करना श्रीकृष्ण जैसे आदर्श मित्र का ही कार्य हो सकता है।

---

१. द्र० आदिपर्व का १९१ वां अध्याय और १८८वां अध्याय।

२. द्र० आदि० १९० अ०।

महाराज द्रुपद से सम्बन्ध स्थापित होने पर पाण्डवों की स्थिति दृढ़ हो गई और उन्हें अब छिपकर रहने की आवश्यकता नहीं रही। धीरे-धीरे यह सूचना भीष्म पितामह और धृतराष्ट्र को भी मिल गई। पाण्डवों को जीवित पाकर ये दोनों बहुत प्रसन्न हुए और उनसे मिलने के लिये उत्सुक हो गये। धृतराष्ट्र के आदेश से विदुर जी को पाण्डवों को लेने के लिये भेज दिया और उनके स्वागत की तैयारी होने लगी। यह देखकर शकुनि और दुर्योधन की आशाओं पर पानी फिर गया, किन्तु उस समय कुछ कर नहीं सके। बाद में राजपरिवार का क्लेश देखकर राज्य के दो भाग कर देने का निर्णय लिया गया। पाण्डवों को खण्डवप्रस्थ का इलाका दिया गया। पाण्डवों ने उस स्थान को ही घोर परिश्रम से सुन्दर बनाया और महर्षि व्यास जी के हाथों से नगर की स्थापना की गई। मय नामक शिल्पी की सहायता से नगर के प्राकार बनाकर सुदृढ़ दुर्ग बनाया और सुरक्षा हेतु सेना को तैयार किया गया। नगर में बावड़ियों, सरोवर, बाग-बगीचे, कृत्रिम पहाड़, सरस्वती मन्दिर, गगनचुम्बी भवन, व्यापार प्रतिष्ठान आदि सभी जनोपयोगी वस्तुओं व स्थानों का प्रबन्ध किया गया। इसी का प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान देहली) रखा गया। इस प्रकार युधिष्ठिर का इन्द्रप्रस्थ में राज्याभिषेक कराकर श्रीकृष्ण द्वारिकापुरी वापिस चले गये।

सुभद्रा का विवाह प्रसंग—श्रीकृष्ण के राज्य (द्वारिकापुरी) के निकट एक प्रभास नामक स्थान है। जिस स्थान पर आजकल सोमनाथ का मन्दिर बना हुआ है। वहां पर एक बार अर्जुन देशाटन करते हुए पहुंच गये। श्रीकृष्ण को मित्र अर्जुन का पता लगने पर बहुत खुशी हुई और वे अर्जुन के स्वागत के लिये तुरन्त वहाँ पहुंचे। दोनों मित्र गले लगकर मिले। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अर्जुन को रैवतक पर्वत पर भ्रमणार्थ ले गये। उसके बाद रथारूढ़ होकर दोनों द्वारिकापुरी आ गये। अर्जुन की वीरता की गाथायें तो नगरवासियों ने पहले सुनी थी, किन्तु आज वीरता की साक्षात् मूर्ति अर्जुन को पाकर नगर निवासियों ने उसका अतिशय हार्दिक स्वागत किया। श्रीकृष्ण के मित्र नगर में आये हैं, इसलिये सारी नगरी को अत्यधिक दुल्हिन की भांति सजाया गया। स्वागत व सत्कार के बाद अर्जुन कुछ दिन वहीं रहे। इतने में यादव वंशियों ने किसी त्यौहार के कारण परम्परा के अनुसार रैवतक पर्वत को खूब सजाया। वहाँ यादव परिवारों का मेला ही लग गया। सुन्दर सजे हुए रथों पर बाजों के साथ

सात्वत-सरदारों की सवारियाँ निकल रहीं थीं। बलराम अपनी रेवती के साथ तथा दूसरे यादव वंशी भी रूपहनी भ्रमण करने आये हुए थे। श्रीकृष्ण भी अर्जुन के साथ इस मंगलोत्सव को देखने के लिये आये। श्रीकृष्ण की वहिन सुभद्रा भी अपनी सखियों के साथ यहाँ आई थी। अर्जुन और सुभद्रा ने जब एक दूसरे को देखा तो वे अपने को संयत नहीं रख सके। श्रीकृष्ण उनके मनोभाव को समझ कर बोले—अर्जुन ! क्या वनोत्सव में भी काम के बाण चलते हैं ? सुभद्रा सभी पारिवारिक जनों को अतिशय प्यारी है। श्रीकृष्ण बोले—यदि तुम्हारी इच्छा हो तो पिता जी से बातें करूँ ? अर्जुन ने मौन होकर स्वीकृति दे दी। श्रीकृष्ण बोले—क्षत्रिय कन्याओं का या तो स्वयंवर होता है, अथवा अपहरण। अर्जुन ने इसी बीच दूत भेजकर बड़े भाई युधिष्ठिर की अनुमति ले ली। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ में स्वयं सुभद्रा को बैठा दिया। किन्तु यह बात श्रीकृष्ण के पारिवारिक जनों तथा वंशजों को अच्छी नहीं लगी और वे युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गये। युद्ध का भेरीनाद बजवा दिया गया। बलराम ने भी श्रीकृष्ण से अर्जुन के इस साहसिक कर्म की भरपूर निन्दा की। युद्ध जैसा वातावरण देखकर श्रीकृष्ण ने अपने वंशजों और पारिबारिक जनों को शान्त करते हुए कहा—वीरयादवों ! मेरी समझ में सुभद्रा का अर्जुन के साथ सम्बन्ध होने से हमारे कुल की प्रतिष्ठा ही बढ़ी है। आर्य पुरुष अपनी कन्याओं का न तो विक्रय करते हैं और न दान करते हैं। राजकुमारियों का उपहार है वीरता। और यह उपहार अर्जुन ने देकर अपना अमिट प्रभाव सुभद्रा के मन पर डाला है। अर्जुन कोई छोटे कुल का भी नहीं है। ये भरत का वंशज, शान्तनु का प्रपौत्र और कुन्ति भोज का दैहित्र है। और बहिन सुभद्रा ने स्वयं उसे अपनी इच्छा से वरण किया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के समझाने से यादव वीर शान्त हो गये और अर्जुन को वहीं रोककर बड़ी धूमधाम से विवाह संस्कार कराया। अर्जुन कुछ दिन विवाह के बाद श्रीकृष्ण के पास ही ठहरे और फिर अपनी यात्रा पूरी करते हुए इन्द्रप्रस्थ वापिस आ गये।

श्री कृष्ण का जरासन्ध के वध में योगदान

महाराज युधिष्ठिर ने सभी भाईयों तथा सहयोगियों की सहायता से अरण्य प्राय खाण्डवप्रस्थ को जलाकर, मय नामक शिल्पी की सहायता से

१. द्र० आदि पर्व का २२१वाँ अध्याय।

जंगल में मंगल कर दिया था। उत्तरोत्तर राज्य की समृद्धि बढ़ रही थी। प्रजा हृदय से राजा को पितृवत मानकर उसका सम्मान करती थी। व्यापार का व्यवस्थित होना निरुपद्रव शासन का चलना, समय पर वर्षादि के होने से समृद्धि का होना, जन सामान्य का नीरोग होना, आदि अच्छे राज्य के ही प्रतीक थे। एक बार धर्मात्मा युधिष्ठिर के मन में धर्मशासन का विस्तार करने के लिए राजसूय-यज्ञ करने का विचार आया। मन्त्री-मण्डल ने भी सर्वसम्मति से उसका समर्थन किया। श्रीकृष्ण को भी इस विषय में परामर्श के लिए दूत भेजकर बुलावा लिया गया।

श्रीकृष्ण जहां धर्मरक्षार्थ सदा समृद्ध, धीर-वीर, नीतिनिपुणता तथा समस्त परिस्थिति को समझने वाले थे, वहां निस्संकोच होकर स्पष्ट वक्ता भी थे। उन्होंने राजसूय-यज्ञ करने से पूर्व युधिष्ठिर को यह सलाह दी कि इस समय आपके राजसूय-यज्ञ में सबसे अधिक बाधक है—मगध नरेश जरासन्ध। उसने अपने बल पराक्रम से ८६ राजाओं को अपनी कैद में रखा हुआ है। और सौ संख्या होने पर उन सभी को क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध मार देगा। क्षत्रिय तो अपनी शक्ति का प्रदर्शन रणक्षेत्र में अन्याय के विरुद्ध ही करता है, किन्तु जरासन्ध ने नृशंसता व क्रूरता ही दिखाई है। प्रथम उसका हम प्रतिरोध करें और वन्दी राजाओं को छुड़ा देवें।

सम्राट् बनने के इच्छुक युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण की बातें यथार्थ होते हुए भी अच्छी नहीं लगी। क्योंकि युधिष्ठिर सम्राट् बनने के लिये नर-संहार नहीं चाहते थे। श्रीकृष्ण ने नर-संहार से डरे हुए युधिष्ठिर को फिर से समझाया—हे युधिष्ठिर ! तू भरत वंशज, कुन्ती का पुत्र होकर ऐसी निराशाभरी बातें करता है, यह एक महान आश्चर्य है। यह सत्य है कि जरासन्ध की विशाल सेना को बिना नर-संहार के नहीं जीता जा सकता। किन्तु क्रूर व्यक्ति को दण्डित न करना भी तो कायरता है। हमें नीति से काम लेना चाहिए, जिससे साँप भी मर जाए और लाठा भी न टूटे। जरासन्ध को युद्ध क्षेत्र में जीतना सरल कार्य नहीं है। हम उसे चुपचाप महलों में जाकर द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारें तो जरासन्ध कदापि चुप नहीं बैठेगा और भीम-अर्जुन की सहायता से उसको मारा जा सकता है। आप मुझे इन दोनों वीरों को दे दीजिए। युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण का यह परामर्श अच्छा लगा और भीम-अर्जुन को ले जाने की अनुमति दे दी।

क्षत्रियोचित कार्य के लिए प्रसन्नता से उद्यत भीम और अर्जुन को साथ लेकर श्रीकृष्ण मगधप्रदेश की ओर चल पड़े। रास्ते में जरासन्ध के

क्रूरता पूर्ण कार्यों की चर्चा करके और क्षत्रिय धर्म की व्याख्या श्रीकृष्ण करते रहे। श्रीकृष्ण जरासन्ध को मारने का भी उपाय सोचते रहे। उन्हें मार्ग में यह ध्यान आया कि जरासन्ध ब्राह्मणों अथवा स्नातकों का बड़ा आदर करता है, चाहे वे आधी रात को ही क्यों न आ जायें। अपने इस व्रत के पालन करने में वह सदा उद्यत रहता है और इस व्रत पालन की सर्वत्र उसकी ख्याति है। अतः ब्राह्मणवेश में हो जरासन्ध के पास पहुंचा जाए। यह सोचकर मगध की राजधानी गिरिव्रज (राजगृह) की ओर चल पड़े। रास्ते में एक माली से पुष्प[1] मालायें छीनकर ले लीं और चारों तरफ फैली पर्वत चोटियों को ही तोड़कर राजग्रह में प्रवेश कर राजा के महल तक पहुँच गये। जरासन्ध ने महल में ब्राह्मण वेष में आये स्नातकों का खूब मधुपर्क आदि से सम्मान किया। भीम-अर्जुन के विषय में परिचय देते हुए श्रीकृष्ण बोले—ये दोनों आजकल मौनव्रत रखे हुए हैं और आधी रात को मौनव्रत खोलेंगे, इसलिए आधी रात को ही मिलने का समय निश्चित किया गया। यज्ञशाला के निकट इनके ठहरने की समुचित व्यवस्था करके जरासन्ध राजमहल में चला गया और आधीरात के समय मिलने के लिए फिर आया।

यद्यपि द्वारपालों से गिरिशृंग तोड़ने की बात जरासन्ध सुन चुका था और अर्जुन व भीम के हाथों में प्रत्यञ्चा या गदा चलाने से पड़े चिह्नों को देखकर उनका ब्राह्मण वेष संदिग्ध हो गया था। और श्रीकृष्ण के द्वारा पूर्ण परिचय स्पष्ट रूप में देने से तो एक सन्देह दूर ही हो गया कि ये ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय ही हैं। श्रीकृष्ण के द्वारा युद्ध के आह्वान को एकांत में सुनकर अभिमानी जरासन्ध द्वन्द्वयुद्ध के लिए तैयार[2] हो गया। यद्यपि श्रीकृष्ण ने तीनों में से किसी एक से युद्ध करने की बात कही थी। किन्तु उसने अपना प्रतिद्वंद्वी भीम को ही बनाया। इन दोनों का द्वन्द्वयुद्ध १३-१४ दिन तक हुआ, ऐसा कहा जाता है। दोनों ही वीरों में कोई कम नहीं था। किन्तु कोई निर्णय होता न देखकर १४ वें दिन श्रीकृष्ण ने भीम को याद दिलाया कि तू तो वायु पुत्र है। वायु की तरह तीव्रता से वार कर। युद्ध में थका शत्रु बहुत कम मिलता है। श्रीकृष्ण के संकेत पर भीम ने उत्साहित होकर जरासन्ध को फुर्ती से टाँगों से पकड़कर चीर दिया और जरासन्ध सदा-सदा के लिए चिरनिन्द्रा में सो गया। जरासन्ध के मरते ही

१. द्र. सभापर्व के १०, १३, १४, १५ अध्याय

२. द्र० सभापर्व के २१, २२, २३ अ०।

श्रीकृष्ण ने सब से पूर्व कैदी राजाओं को छुड़ाया। उनके प्रत्येक के मुख से श्रीकृष्ण के प्रति धन्यवाद का शब्द ही निकल रहा था। श्रीकृष्ण ने उन सभी राजाओं को युधिष्ठिर के साम्राज्य में मिलने की सलाह देकर जाने का आदेश दिया और बिना नर-संहार के एक दुर्दान्त शत्रु को समाप्त कर उसी के पुत्र सहदेव को राजसिंहासन पर बैठाकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का मार्ग निष्कण्टक कर दिया।

यहां पर यह शंका हो सकती है कि क्या श्रीकृष्ण ने व्यक्तिगत द्वेष का बदला लेने के लिए युधिष्ठिर को यह परामर्श दिया था? किन्तु ऐसा सोचना नितान्त गलत है। श्रीकृष्ण तो द्वारिकापुरी में शान्ति से रहने लगे थे। यदि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ की बात नहीं करते तो श्रीकृष्ण ऐसी सलाह कैसे देते? और ८६ राजाओं को कैद में रखना और उन्हें क्षत्रिय विरुद्ध कैद करके मारने की धमकी देना सर्वथा ही अधर्मयुक्त कार्य तथा अन्याय था। और द्वन्द्वयुद्ध से पूर्व भी श्रीकृष्ण ने राजाओं को कैद से छोड़ दो अथवा द्वन्द्वयुद्ध करो, यह विकल्प ही जरासन्ध के समक्ष रखा था। यदि वह राजाओं को छोड़ देता तो उसके प्राण बच भी सकते थे। और इस बात से स्पष्ट होता है कि जरासन्ध के मरवाने में श्रीकृष्ण का व्यक्तिगत विद्वेष कारण बिल्कुल भी नहीं था। प्रत्युत अन्याय का प्रतिकार और धर्मरक्षा करना ही उद्देश्य था।

राजसूय-यज्ञ में श्रीकृष्ण का सर्वोपरि सम्मान

जरासन्ध की मृत्यु के पश्चात् राजसूय-यज्ञ का मार्ग प्रशस्त हो गया और उसकी तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। यज्ञ की सुव्यवस्था के लिए कार्यों का वितरण किया गया। जैसे दुःशासन को भोजन व्यवस्था तथा राजाओं का सत्कार, कृपाचार्य को स्वर्णरत्नों की रक्षा तथा यज्ञ की दक्षिणा देना, विदुर को व्यय का भार; तथा पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य को देखभाल का कार्य सौंपा गया। परन्तु श्रीकृष्ण ने यज्ञ में आने वाले ब्राह्मणों के पैर धोने का कार्य सहर्ष स्वीकार किया, यह उनकी महत्ता शालीनता, विनम्रता एवं सहृदयता का ही सूचक कार्य था। चारों दिशाओं में दिग्विजयार्थ चारों पाण्डवों को भेजा गया अर्थात अर्जुन को उत्तर में, भीम को पूर्व में, सहदेव को दक्षिण में और नकुल को पश्चिम में भेजा गया। इस स्थल पर महाभारत में जिन प्रदेशों का वर्णन मिलता है, उससे स्पष्ट है कि भारत देश कितना विशाल था। उत्तर में अफगानिस्तान से लेकर तिब्बत, आसाम तक, दक्षिण में लंका तक सभी राष्ट्र भारत राज्य

के अन्तर्गत ही थे। देश के विभिन्न राज्य अपनी आन्तरिक नीति में स्वतंत्र थे किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय नीति में परवश भी थे। राजसूय यज्ञ का समारोह देखन योग्य था। युधिष्ठिर की दीक्षा के पश्चात् अर्घ देने का जब समय आया तो भीष्म ने कहा—आचार्य, ऋत्विज्, स्नातक और राजा को अर्घ दिया जाता है। प्रथम यह निश्चय किया जाए कि अर्घ किसे देना है! युधिष्ठिर ने कहा कि इस अग्रपूजा के योग्य वही व्यक्ति हो सकता है कि जो सर्वगुण सम्पन्न अर्थात् इस समय ज्ञानादि की दृष्टि से सर्वाधिक हो भीष्म ने कुछ देर विचार कर' कहा–मैं सभी राजाओं मे श्रीकृष्ण को पूज्यतम समझता हूं। क्योंकि इस संसार में इस समय वेद विज्ञान तथा शस्त्रास्त्रादि चलाने की शक्ति में श्रीकृष्ण से अधिक कोई नहीं है। मैं यहां किसी दूसरे राजा को नहीं देख रहा हूं. जिसको श्रीकृष्ण ने अपने तेज से नहीं जीता है। श्रीकृष्ण ने जन्म से लेकर अब तक के जो-जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं उनसे हम सभी उनके अप्रतिम यश और शौर्य पर मुग्ध हैं। भीष्म के कहने के वाद सहदेव ने श्रीकृष्ण को अर्घ प्रदान किया।

इस अग्रपूजा के अवसर पर श्रीकृष्ण का नाम सुनकर चेदिराज शिशुपाल लाल-पीला हो गया, क्योंकि वह तो रुक्मणि-हरण की घटना से ही श्रीकृष्ण के प्रति कुपित था। उसने कहा कि श्रीकृष्ण अर्घदान के पात्र ही नही है। श्रीकृष्ण आचार्य, ऋत्विज्, स्नातक तथा राजा इनमें से कोई भी नहीं है। उसने श्रीकृष्ण पर बाल्यकाल से लेकर अब तक सभी स्त्रीघाती, गोघाती, साधारण ग्वाला, पेटू कुत्ता, नपुंसक, कृतघ्न, छली आदि कहकर दोष लगाये। और भीष्म को भी झूठी प्रशंसा करने वाला भाट बताया। शिशुपाल को इस प्रकार बड़बड़ाता देखकर भीम से नहीं रहा गया, किन्तु भीष्म ने उसे रोक दिया तत्पश्चात् श्रीकृष्ण को युद्धार्थ ललकारा और राजाओं को भड़काने लगा। श्रीकृष्ण गालियाँ तो चुपचाप सुनते रहे किन्तु क्षत्रिय होकर युद्ध के आह्वान को कैसे सहन कर सकते थे। वे खड़े हो गये और सभी राजाओं को सम्बोधित करके बोले—शिशुपाल ने अब तक सैकड़ों पाप किये हैं। किन्तु अपनी फूफी के कहने पर मैं इसे क्षमा करता रहा हूं। क्षमा की भी एक सीमा होती है। हमारे पीछे इसने द्वारिकापुरी[2] को जलाया, अपनी मामी को उड़ा ले गया, इत्यादि इसके पापों को क्षमा करता रहा हू। श्रीकृष्ण की बात सुनकर कुछ तो राजा पहले ही

१. द्र० सभा० ३६/२७, सभा० ३७/१६।

२. सभापर्व ४५ अ०।

शिशुपाल के कर्मों से नाराज थे, अब तो उन्हें पूर्णतः ही इससे घृणा हो चुकी थी। और दूसरे भी इसके कटुशब्दों को सुनकर कुपित हो गये थे। सब के सम्मुख शिशुपाल के पापों को याद दिलाकर श्रीकृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र चलाकर शिशुपाल की गर्दन को देखते देखते ही उड़ा दिया और उसके स्थान पर वहीं उसके पुत्र को राजा बना दिया गया।

तत्पश्चात् राजसूय यज्ञ का समापन हो गया। सभी राष्ट्रों के राजाओं ने महाराज युधिष्ठिर को तरह-तरह के उपहार भेंट में दिये। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को सम्राट् बनाने की बधाई देकर द्वारिका पुरी वापिस आ गये। इसके बाद सभापर्व में श्रीकृष्ण का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

श्रीकृष्ण का शाल्व के साथ युद्ध—जहाँ आजकल अलवर है, वहाँ महाभारत के समय शाल्वपुर नामक नगर था। इसके चारों तरफ मार्त्तिकावर्त नामक प्रदेश था और शाल्वपुर उसकी राजधानी थी। इस प्रदेश का राजा शाल्व था। उसने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जब शिशुपाल का वध सुना, तो बहुत क्रोध से लाल-पीला हो गया। यह शाल्व राजा शिशुपाल का मित्र था और वह रुक्मिणी के स्वयंवर से ही कुपित था। किंवदन्ती यह भी है कि इसने स्वयंवर में ही यादवों के विनाश की प्रतिज्ञा की थी। श्रीकृष्ण अभी इन्द्रप्रस्थ में ही थे, पीछे से शाल्व ने द्वारिकापुरी पर आक्रमण कर दिया। द्वारिका को युद्ध की दृष्टि से सुदृढ़ दुर्ग के रूप में बनाया गया था। उसके चारों ओर चार द्वार थे। द्वारों पर योद्धाओं की चौकियाँ थीं। शत्रु के हमले की जानकारी देने वाले यन्त्र लगा रखे थे। लड़ाई का सामान स्थान-स्थान पर रखा हुआ था। सब ओर बुर्ज थे, बीच का बुर्ज सर्वोच्च था। इन बुर्जों पर पहरेदार तैनात किए हुए थे। शत्रु के हमले की चेतावनी सबको दे दी गई थी और युद्ध की भेरी बजा दी गई थी। सारे राष्ट्र में सुरापान का निषेध कर दिया गया था। शाल्व के पास एक ऐसा विमान था, जिसमें जीवन की सब सुविधायें थीं और उसमें बैठकर युद्ध भी किया जा सकता था। शाल्व के सेनापति क्षेमवृद्धि ने यादवों पर आक्रमण कर दिया और वह सांब यादव से लड़कर युद्ध से भाग गया। उसके बाद वेगवान् सेनापति आगे बढ़ा, वह युद्ध में मारा गया। उसके बाद दूसरे योद्धा आये तो श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने बाण वर्षा करके भूमि पर लिटा दिये, अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होता देख कर शाल्व स्वयं आगे बढ़ा, जिसका मुकाबला प्रद्युम्न ने किया। प्रद्युम्न

१. द्र० वनपर्व १५वाँ प्र०। मौसल पर्व का प्रथम अध्याय।

ने शाल्व के मायावी अस्त्रों को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। लड़ते-लड़ते दोनों योद्धा मूर्छित हो गये। प्रद्युम्न का सारथी दारुकि रण क्षेत्र से रथ को अलग ले गया। प्रद्युम्न ने सचेत होकर सारथी को धमकाया कि तूनें यह क्या किया, यह तो भीरुओं का कार्य है। प्रद्युम्न फिर युद्ध में जा डटा, इस बार युद्ध बहुत ही भयंकर हुआ। शाल्व को बहुत चोटें आयीं और वह रण क्षेत्र छोड़कर भाग गया।

इन्द्रप्रस्थ से जब श्रीकृष्ण द्वारिकापुरी पहुँचे, उससे पूर्व ही यह सब हो चुका था। श्रीकृष्ण ने यादव सेना के साथ शाल्व के राज्य पर हमला कर दिया। शाल्व सौभ-विमान से श्रीकृष्ण से लड़ने के लिये आ धमका। दोनों ओर से युद्ध बहुत भयंकर हुआ। श्रीकृष्ण ने आग्नेय शस्त्राशस्त्रों से सौभ-विमान को तोड़कर शाल्व को भी मार दिया। इस प्रकार शाल्व की द्वारिका-विजय की कामना सदा-सदा के लिये समाप्त हो गई।

पाण्डवों के प्रवास का कारण तथा अन्य घटनायें

जब श्रीकृष्ण राजा शाल्व के साथ लड़ाई में लगे हुए थे, उन्हीं दिनों इन्द्रप्रस्थ में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनायें हो गईं। राजसूय-यज्ञ की सफलता तथा इन्द्रप्रस्थ के समृद्ध वैभव दुर्योधन को सहन न हुए और उसने शकुनि के सहयोग से पाण्डवों को राज्य-भ्रष्ट कर दुःखी करने का कूट षड्यन्त्र रच दिया। द्यूत क्रीडा में अत्यन्त दक्ष शकुनि ने सरल प्रकृति धर्मराज युधिष्ठिर को जुए में प्रवृत्त कराकर अपने आप को, द्रौपदी तथा राज्य को भी दांव पर लगवा दिया। जिस दुर्योधन ने बाल्यकाल में भीम को बन्धवा[1] कर जल में फिंकवा दिया था, जिसने लाक्षागृह की रचना करवा कर पाण्डवों को सदा के लिये समाप्त करने का ही षड्यन्त्र किया था, वह इन्द्रप्रस्थ के राजमहलों में पाण्डवों को कैसे शान्ति से रहने देता। राजसूय-यज्ञ के अवसर पर जब इन्द्रप्रस्थ के भवनों को देखने के लिये दुर्योधन जा रहा था, उस समय कुछ अद्भुत घटनायें भी घटीं। महलों के स्फटिकमय[2] पत्थरों की चमकीली जगहों पर दुर्योधन को बहुत भ्रम हो गया। जहाँ जल नहीं होता वहाँ जल समझकर दुर्योधन अपने कपड़ों को ऊपर करके चलने लगा। इसी प्रकार जल से पूर्ण वापी बावड़ी को जल न समझकर आगे बढ़ता तो वह वस्त्रों सहित जल में गिर जाता। जल में गिरे दुर्योधन को देखकर भीम आदि तथा सभी सेवक हँसने लगते। इसी

---

१. द्र० आदि पर्व १२८।५४। २. द्र० सभापर्व ४७।४-१४।

प्रकार खुले द्वारों को हाथ से खोलने लगता और बन्द द्वारों को खुले समझकर आगे बढ़ता और जोर से सिर किवाड़ों में लग जाता। इस प्रकार की घटनाओं से दुर्योधन का बाल्यकालीन-ईर्ष्याभाव घी की आहुति से अग्नि की भांति भड़क उठा। इसी दुर्भावना से पूर्ण दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुए में फंसाने का जाल फैलाया। यद्यपि अपने समय के महान् राजनीतिज्ञ विदुर ने जुए के प्रस्ताव को महान् दुष्कर्म' बताकर निन्दा भी की थी, किन्तु उसकी सलाह को नहीं माना गया और युधिष्ठिर जुआ खेलने हस्तिनापुर आ गये, शकुनि छलकपट में सफल हो गया। युधिष्ठिर क्रमशः साम्राज्य, चारों भाई, अपने आपको और द्रौपदी को दांव पर लगाकर हार गये। दुर्योधन की आज्ञा से द्रौपदी को सभा में लाया गया। विदुर के धमकाने का भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। दुःशासन भरी सभा में द्रौपदी को' घसीटकर लाया। किसी ने द्रौपदी को दासी और किसी ने वेश्या भी कहा। यहां द्रौपदी को एक वस्त्रा तो लिखा है, किन्तु चीरहरण तथा श्रीकृष्ण की सहायता का कोई वर्णन नहीं है। इस द्यूतजन्य समस्त काण्ड का अन्त में जब धृत' राष्ट्र को पता लगा तो उसने द्रौपदी को वर मांगने को कहा। द्रौपदी ने प्रथम वर में दासभाव से युधिष्ठिर की तथा दूसरे वर में दूसरे पाण्डवों की स्वतन्त्रता चाही। द्रौपदी सहित पांचों पाण्डव इन्द्रप्रस्थ जाने लगे, तो दुर्योधन को बड़ा पछतावा हुआ और धृतराष्ट्र के पुत्र मोह का लाभ उठाकर द्रौपदी सहित पांचों पाण्डवों को १२ वर्ष का वनवास तथा १३वें वर्ष का अज्ञातवास का आदेश दिया गया। वनवास के लिये जाते समय पाण्डवों के इष्टमित्र, सम्बन्धी तथा सहयोगी राजा भी मिलने आये, किन्तु तब कुछ भी नहीं कर सकते थे। इस अवसर पर सभापर्व (६९।१०) के अनुसार श्रीकृष्ण भी आये थे और उन्होंने सान्त्वना देते हुए यही कहा यदि मैं होता तो जुए का खेल होने ही नहीं होने देता। अब तो जो कुछ हुआ सो हुआ, अब तो तेरह वर्ष बीत जाने दो फिर साम्राज्य-स्थापना के लिये प्रयास करेंगे।

श्री कृष्ण का मिलन

बारह वर्ष तक द्रौपदी-सहित पाण्डव जंगलों में रहते रहे, किन्तु अज्ञातवास का एक वर्ष बिताना सरल नहीं था। जो राजकुमार राजसूय-यज्ञ करके और सभी राजाओं को अपने अधीन करके लोक विश्रुत हो चुके

---

१. द्र० सभापर्व ६१।९। २. सभापर्व ६६-६७ अ०।

३. द्र० सभापर्व ७१। ३१-३२।

थे, उनका छिपकर रहना कैसे सम्भव था ? इस पर भी दुर्योधन के गुप्तचर चारों तरफ छोड़ रखे हों, तब और भी कठिन कार्य था। पाण्डवों ने यह अज्ञातवास राजाविराट के यहाँ वेष बदलकर व्यतीत किया। स्वयं राजा विराट को भी इनके भेद का पता नहीं लगा। अज्ञातवास का पूर्ण समय व्यतीत होने पर[1] राजा विराट के सभा भवन में ही पाण्डवों के अतिरिक्त श्रीकृष्ण बलराम, द्रुपद, सात्यकि, तथा दूसरे सम्बन्धी व हितचिन्तक इकट्ठे हुए। सभा में[2] श्रीकृष्ण ने सबके समक्ष पाण्डवों की दशा और दुर्योधन के द्वारा किये गये अन्याय का भी कथन किया। और द्यूत समय में किये प्रण का पूरा होने पर पाण्डवों का राज्य वापिस दिलाया जाये, इस विषय में श्रीकृष्ण का विचार यह था कि किसी तरह युद्ध के बिना ही यह कार्य सम्पन्न हो जाये और व्यर्थ में खूनखराबा न होवे। श्रीकृष्ण के बाद बलराम भी बोले, किन्तु युधिष्ठिर पर जुए का दोष लगा बैठे। इस पर सात्यकि व वृद्ध द्रुपद भी बोले। उन्होंने युद्ध की तैयारी करने की बात कही। श्रीकृष्ण ने फिर समझाया कि इस समय हम अभिमन्यु के बिवाह में आये हुए हैं। कौरव-पाण्डव दोनों ही हमारे आत्मीय-जन हैं। इसलिये मेरी इच्छा है कि शान्ति से ही कार्य लेना चाहिये और चेतावनी भी दी कि यदि युद्ध आवश्यक ही हुआ तो युद्ध में विजय अर्जुन की ही होगी। सभा में दुर्योधन के भी दूत बैठे थे। अपने समय के सर्वमान्य नीतिज्ञ श्रीकृष्ण के विचारों का बड़ा प्रभाव होता था। श्रीकृष्ण अपनी सलाह देकर द्वारिकापुरी वापिस आ गये। और वृद्ध द्रुपद के परामर्श से युधिष्ठिर ने अपने पुरोहित को दूत बनाकर हस्तिनापुर भेज दिया।

युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन पक्ष कैसे चुना—

विराट नगर से श्रीकृष्ण के द्वारिकापुरी वापिस आने पर कौरव-पाण्डव दोनों पक्षों में ही युद्ध की तैयारी होने लगी थी। देश-देशान्तरों के राजाओं को अपने-अपने पक्ष में करने के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये थे। इसी सन्दर्भ में कौरव पक्ष से दुर्योधन और पाण्डव पक्ष से अर्जुन श्रीकृष्ण को निमन्त्रित करने के लिये द्वारिकापुरी पहुँचे। यद्यपि बहन सुभद्रा का अर्जुन

---

१. इसी बीच विराट की कन्या उत्तरा का विवाह अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के साथ हुआ, जिसमें सभी सम्बन्धी आये हुए थे।

२. द्र० उद्योगपर्व १ अ०।

से तथा उत्तरा का अभिमन्यु से विवाह-सम्बन्ध ही श्रीकृष्ण अर्जुन की अभिन्न मित्रता का परिचायक था पुनरपि धर्मात्मापुरुषों की दृष्टि में सभी अपने होते हैं। यद्यपि दुर्योधन पहले पहुँच गया था, किन्तु अभिमान-वश[1] श्रीकृष्ण के सिरहाने बैठा था और अर्जुन बाद में पहुँचे, किन्तु वे पैरों की ओर बैठे। श्रीकृष्ण जैसे ही जागे तो उन्होंने [अर्जुन को पहले देखा। दोनों ही ने प्रणाम करके अपने आने का प्रयोजन प्रकट किया। दोनों ही श्रीकृष्ण को अपने-अपने पक्ष में करना चाहते थे। श्रीकृष्ण भी एक बार धर्म संकट में पड़ गये। कुछ समय सोचकर बोले—दुर्योधन यद्यपि आप प्रथम आये हैं किन्तु मेरी दृष्टि अर्जुन पर प्रथम पड़ी, अतः मेरे लिये दोनों ही बराबर हैं। मैं दोनों की ही सहायता करना चाहता हूँ। मैं एक तरफ निश्शस्त्र रहूंगा और दूसरी तरफ मेरी समस्त सेना होगी। अर्जुन ने तुरन्त श्रीकृष्ण का चयन किया। दुर्योधन मन ही मन हर्षित हो रहा था कि अकेले निहत्थे श्रीकृष्ण को अपेक्षा यादवसेना ही ठीक रहेगी। यहां युद्ध में हथियारहीन होकर रहना इस बात का सूचक है कि श्रीष्ण युद्ध नहीं चाहते थे।

श्रीकृष्ण का स्वयं दूत बनकर शान्तिस्थापना का अन्तिम प्रयास—

युधिष्ठिर के दूत की बातों को धृतराष्ट्र, भीष्म, दुर्योधन, कर्ण आदि ने ध्यान से सुना। भीष्म ने दूत की बातों को मानने का आग्रह भी किया, किन्तु शकुनि और कर्ण का बहकाया दुर्योधन युधिष्ठिर की बातों को कैसे स्वीकार कर सकता था? उस समय भीष्म से अर्जुन की वीरता की बातों ने वातावरण को और भी तनावपूर्ण बना दिया। अन्त में धृतराष्ट्र ने संजय को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजने का निर्णय किया। संजय ने जाकर धृतराष्ट्र का सन्देश सुनाया कि युद्ध करना महा अधर्म होगा। युद्ध से दोनों पक्षों की हानि होगी। युधिष्ठिर ने भी दूत की बातों से सहमति प्रकट की किन्तु हमें हमारा राज्य इन्द्रप्रथ का वापिस दे दिया जाये।

इस पर संजय शान्ति की बात ही करते रहे। अन्त में युधिष्ठिर ने कहा श्रीकृष्ण जैसा चाहें, या निर्णय करें, वैसा ही हमें स्वीकार है। श्रीकृष्ण ने इस प्रसंग में बहुत आदर्शों की बात भी कहीं, किन्तु साथ ही धर्म की रक्षा करना, किसी के साथ अन्याय न होने देना भी आवश्यक है। दुर्योधन ही पाण्डवों का राज्य छीनकर अधर्म कर रहा है। अतः तुम जाकर हमारा

---

१. द्र० उद्योगपर्व ७।१५-१६।

यही सन्देश कहो कि पाण्डवों का राज्य वापिस किया जाये। अन्यथा युद्ध में कौरव पक्ष का विनाश निश्चित है। ऐसा कहकर संजय को तो भेज दिया। किन्तु श्रीकृष्ण हृदय से सन्धि चाहते थे, वे युद्ध विभीषिकाओं को भलीभांति जानते थे, अतः शान्ति के परमेच्छुक थे। दोनों तरफ युद्ध की तैयारी देखकर सन्धि की बातें आकाश पुष्प की भांति,असम्भव ही लग रही थीं। पुनरपि यही विचार किया कि मैं स्वयं हस्तिनापुर जाकर कौरवों को समझाने का प्रयास तो करता हूं। पुरुषार्थ करना हमारा कर्त्तव्य है, फल तो ईश्वराधीन ही है। श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर जाना युधिष्ठिर को अच्छा नहीं लगा कि कहीं दुर्योधन अशिष्टता न कर बैठे। श्रीकृष्ण को अपने ऊपर अत्यधिक विश्वास था और भय तो बिल्कुल था ही नहीं। भविष्य में लोग युद्ध के विषय में यह तो नहीं कहेंगे कि श्रीकृष्ण जैसे व्यक्तियों ने युद्ध को क्यों नहीं रोका था। और दुर्योधन पक्ष के धर्मप्रिय लोग भी न्यायान्याय को भलीभांति समझ जायेंगे।

हस्तिनापुर जाने से पूर्व पाँचों पाण्डवों से विचार-विमर्श किया, इसके बाद द्रौपदी ने अपने अपमान की बात याद दिलाई। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को धैर्य बंधाते हुए कहा—या तो दुर्योधन मेरी बात मान लेगा अथवा उसे पश्चात्ताप ही करना पड़ेगा, उसकी रानियां विलाप करती रहेंगीं। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर[1] के लिये चल पड़े। श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर-वासियों ने बड़े ठाट-बाट के साथ स्वागत किया। श्रीकृष्ण सबसे पहले विदुर के घर रह रही पाण्डवों की माता कुन्ती के पास गये, जो १३ वर्षों से पुत्रों की चिन्ता में रात-दिन चिन्ता में बिता रही थी। कुन्ती को समझाना कोई सरल कार्य नहीं था। कुन्ती ने रोते-रोते श्रीकृष्ण से बहुत से प्रश्न पूछे और अन्त में भीम अर्जुन के नाम यह सन्देश दिया कि जिस दिन के लिये क्षत्राणियाँ पुत्र को जन्म देती हैं, वह समय आ गया और यदि तुम अब भी शान्त बैठे रहे तो पछताना नहीं, प्रत्युत सारे क्षत्रिय तुम्हें धिक्कार करके निन्दा किया करेंगे। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास गये, किन्तु दुर्योधन का आतिथ्य और भोजन स्वीकार नहीं किया और कहने लगे—राजन् ![2] पराये घर का अन्न दो कारणों से खाया जाता है, या तो प्रेमवश, अथवा आपत्ति में। हमारे साथ तुम्हारी प्रीति तो है नहीं और हम संकट में भी नहीं हैं। अतः भोजन की बात करना व्यर्थ है। इसके

---

१. द्र० उद्योगपर्व ८२-८३ अ०।

२. उद्योगपर्व ९१।२५।

बाद श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के निवास पर गये और विदुर के घर भोजन किया। संसार में यह श्रीकृष्ण के स्वाभिमान का परमोच्च आदर्श रहा है कि जो एक राजा के भोजन को त्याग कर एक तपस्वी का भोजन स्वीकार करना। विदुरजी ने भी श्रीकृष्ण को बहुत कुछ कहा कि यह दुर्योधन चिकना घड़ा हो गया है। इस पर तुम्हारा कुछ भी प्रभाब नहीं होगा। श्रीकृष्ण ने विदुर जी को जो उत्तर दिया था बह उनके परम धार्मिक होने का प्रतीक है। वे बोले—दुर्योधन की दुष्टता को मैं भलीभांति जानता हूं, परन्तु सारी पृथिबी खून से लथपथ होती भी नहीं देखी जाती। इस युद्ध के जो भयंकर परिणाम होंगे वे कल्पनातीत ही होंगे। मैं तो एक बार समझाने का ही प्रयास अबश्य करूंगा और दोनों पक्षों की भलाई की बात कहने आया हूं। मानना या न मानना इन पर निर्भर है। इस प्रकार रात को विदुर जी के घर पर ही रहकर प्रातः उठे और प्रातःकालीन सन्ध्या-हवन[1] करके धृतराष्ट्र की सभा में जा पहुँचे। सभा में जाकर श्रीकृष्ण का जो भाषण हुआ, जिसमें युद्ध के गुण दोषों का भी वर्णन किया गया था। धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण से सहमत होते हुए भी कुछ कर नहीं सकते थे। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को ही समझाने को बात श्रीकृष्ण से कही। श्रीकृष्ण ने उसे भी बहुत समझाया, उसके ऊँचे कुल व वोरता की गाथा भी गाई। युद्ध से कुलनाश, वीरों का नाश तथा व्यर्थ में खूनखराबा होगा। श्रीकृष्ण के भाषण से प्रभाबित होकर भीष्म, द्रोण विदुरादि ने भी खूब समझाया, किन्तु दुर्योधन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ और उसने दो टूक यही उत्तर दिया—श्रीकृष्ण! अब[2] मैं युद्ध के बिना पाण्डबों को सुई के नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूंगा।

दुर्योधन का उत्तर सुनकर श्रीकृष्ण ने उसको बहुत धमकाया, उसके अधर्मपूर्ण कार्यों को गिनाकर उसकी मूर्खता समझाई और उसे चेतावनी भी दी—हे मूर्ख! तेरे सिर पर अब काल मंडरा रहा है। श्रीकृष्ण की बातों से फुफकारते हुए सर्प की भांति दुर्योधन चिन्ता में पड़कर बड़बड़ाने लगा। तत्पश्चात् धृतराष्ट्र को भी समझाया कि तुम दुर्योधन को बांध कर देश, कुल व क्षत्रिय जाति की भलाई के लिये कारागार में डाल दो। मैंने भी इसीलिये अपने अधर्मी मामा कंस का वध कर दिया था। तुम पाण्डबों से सन्धि करके कुल की रक्षा करो। परन्तु धृतराष्ट्र पुत्रमोह से

१. उद्योगपर्व ९३।६।

२. उद्योगपर्व १२९।६।

इतना अन्धा हो चुका था कि वह कुछ कर नहीं सकता था। उसने विदुर को भेजकर गान्धारी को बुलवाया और दुर्योधन को समझाने को कहा। गान्धारी ने बहुत तरह से पुत्र को समझाया तथा कुलनाश का भय भी दिखाया, किन्तु दुराग्रही व अभिमान के नशे में चूर दुर्योधन ने एक नहीं सुनी। और वहाँ से उठकर श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने के इच्छुक शकुनि आदि के साथ मिल गया। सात्यकि को जब यह पता लगा तो वह बहुत क्रोधाकुल हो गया। अपनी सेना को तैयार रहने का आदेश देकर श्रीकृष्ण को भी सूचित कर गया। यद्यपि दूत को बन्दी बनाना निन्दनीय कार्य था, किन्तु राजमद से अन्धा व्यक्ति क्या नहीं कर सकता। धृतराष्ट्र भी लज्जा और क्रोध से कांपने लगा और दुर्योधन को बुलाकर खूब धिक्कारा। अन्त में श्रीकृष्ण सभा से विदा होकर कुन्ती के पास आये और कुन्ती ने अपने पुत्रों को सन्देश दिया कि वे क्षत्रिय धर्म को भूलें नहीं। क्षत्रिय होकर अन्याय को सहन करना कदापि उचित नहीं है। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण विराट्नगर की ओर प्रस्थान कर गये। इस प्रकार शान्ति का सत्प्रयास करने वाले श्रीकृष्ण यद्यपि अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए, किन्तु दुर्योधन की सभा में उपस्थित तथा धृतराष्ट्र भी यह समझ गये कि हमारा पक्ष अधर्म का है और हम पाण्डवों के साथ अन्याय कर रहे हैं। युद्ध में शत्रु-पक्ष का यह जनाना भी उसके मनोबल को कम करके मारने के समान ही होता है।

इस स्थल पर महाभारत में श्रीकृष्ण के विराट्रूप का भी उल्लेख किया गया है, किन्तु यह अनावश्यक व काल्पनिक होने से परवर्त्ती प्रक्षेप है। श्रीकृष्ण इतने बलवान् वीर योद्धा और आत्मविश्वासी थे उन्हें पकड़ना सम्भव ही नहीं था और सात्यकि, कृतवर्मा आदि वीर सभा में ही श्रीकृष्ण की रक्षा के लिये भी उपस्थित थे तथा दुर्योधन के पक्ष में भी भीष्म, द्रोण आदि महारथी दुर्योधन की दुष्टता को भलीभांति समझ रहे थे। यथार्थ में इनका मन पाण्डवों के पक्ष में ही था। ये लोग हृदय से पाण्डवों का राज्य देने के पक्ष में थे, अतः श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने में कभी सहयोग नहीं करते।

महाभारत संग्राम में श्रीकृष्ण की भूमिका

श्रीकृष्ण अपने समय के अपूर्वयोद्धा तथा ज्ञान-विज्ञान वेत्ता भी थे। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर क्षात्र धर्म के अतिरिक्त राजनीति के अद्भुत खिलाड़ी भी थे। महाभारत में शान्ति के सभी उपायों के असफल होने पर युद्ध के अतिरिक्त कोई मार्ग ही नहीं रहा था। महाभारत के संग्राम की बागडोर श्रीकृष्ण के हाथों में रही, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यद्यपि श्रीकृष्ण हृदय से पाण्डवों के पक्ष में रहे, किन्तु युद्ध में शस्त्राशस्त्र न उठाने का भी उनका महान् प्रण था। युद्ध में शस्त्राशस्त्रों की चलाने की दक्षता भी जहाँ आवश्यक है, वहाँ बुद्धि चातुर्य से उसका नेतृत्व भी परमावश्यक है। कुरुक्षेत्र के मैदान में यह भयंकर संग्राम १८ दिन तक चला, जिसमें समस्त विश्व के दिग्गज[1] राजा दो पक्ष बनाकर लड़े। इस संग्राम में जन-धन की कितनी क्षति हुई, इसका अनुमान लगाना अतीव दुष्कर कार्य है। महर्षि दयानन्द ने इस संग्राम के दुष्परिणाम बताते हुए लिखा है— (१) "महाभारत युद्ध में कौरव, पाण्डव और यादवों का **सत्यानाश हो गया सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुटाकर दुःख सागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेश-विनाशक नीच के दुष्टमार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं।"** (स०प्र० १० समु०)

१. यह बात काल्पनिक नहीं। महर्षि दयानन्द ने लिखा है—"चीन का भगदत्त, अमेरिका का बभ्रुवाहन, यूरोप देश का बिडालाक्ष ... यवन जिसको यूनान कह आये और ईरान का शल्य आदि सब राजा... महाभारत युद्ध में सब आज्ञानुसार आये थे।" (स० प्र० ११ समु०)

इस संग्राम से आर्यावर्त्त देश को तो जबरदस्त धक्का लगा, क्योंकि इस भूमि पर यह संग्राम लड़ा गया। कौरव पक्ष में पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, शूर-वीर कर्ण और शल्य जैसे महारथियों ने सेना का नेतृत्व किया और पाण्डव पक्ष में धनुर्धर अर्जुन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, महाबली भीम आदि महारथी थे। परन्तु इस संग्राम में श्रीकृष्ण का विशेष महत्व रण-नीति चातुरी थी। युद्ध में आने वाली जटिल समस्याओं का समाधान जिस ऊहापोह के साथ तत्काल श्रीकृष्ण कर पाते थे, उसको देखकर शत्रु पक्ष के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ भी दंग रह जाते थे। हम यहां श्रीकृष्ण की प्रखर बुद्धि की ऊहा के कतिपय स्थलों का ही उल्लेख करके उनकी युद्ध-नीति, धर्म नीति, राजनीति एवं युद्ध करते हुए भी निष्काम कर्मयोग में रहकर सन्तुलन बनाये रखने के श्रीकृष्ण जी के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं को ही दिखाना चाहते हैं।

(१) **कर्त्तव्य विमुख अर्जुन को अमरता का उपदेश**—युद्ध क्षेत्र में कौरव-पाण्डवों के सेना-दल युद्धार्थ सन्नद्ध खड़े हैं, दोनों ओर से सेनापतियों ने युद्ध के शंख बजा दिये हैं। योद्धाओं की भुजायें अपना युद्ध कौशल दिखाने के लिये फड़क रहीं हैं। घोड़ों व हाथियों की टापों की ध्वनियों से आकाश-पाताल गूंज रहे हैं। ऐसे समय पाण्डव पक्ष के महारथी अर्जुन अपने गाण्डीव को छोड़कर रथ से उतर जाते हैं और श्रीकृष्ण से करबद्ध प्रार्थना करते हैं—भगवन्! मैं युद्ध नहीं करूंगा। ये मेरे सामने पूज्य दादा, गुरु तथा सम्बन्धी लड़ने के लिये खड़े हैं, इन्हें मारकर मैं पृथ्वी के खून से लथपथ राज्य का क्या करूंगा? उस समय श्रीकृष्ण ने क्षात्र धर्म, निष्काम कर्मयोग तथा आत्मा की अमरता का जो उपदेश अर्जुन को दिया, वह विश्व के इतिहास में अद्‌भुत एवं अलौकिक है, जिसे सुनकर मोहग्रस्त अर्जुन का मोह तो दूर हो गया और क्षात्रधर्म एवं कर्त्तव्य बोध की स्मृति होने से अर्जुन वीरता से युद्ध में प्रवृत्त हो गया। श्रीकृष्ण का आज भी वह पावन उपदेश हताश लोगों में आशा का, दुख मग्न मनों में सुखों का, कर्त्तव्यच्युत जनों में कर्मण्यता का, पथभ्रष्ट लोगों को कल्याण पथ पर चलने का सतत सन्देश दे रहा है। विश्व के सभी मनुष्य आज भी उस उपदेश को सुनने के लिये अनवरत प्रवृत्त हो रहे हैं, यही श्रीकृष्ण के पावन ज्ञान की सतत धारा भविष्य में भी आध्यात्मिक शान्ति का प्रवाह प्रवाहित करती रहेगी। वर्तमान में उस उपदेश को हम 'गीता' के नाम से जानते और पढ़ते हैं, परन्तु यह ७०० श्लोकों की गीता वैष्णव धर्म की काल्पनिक बातों से भी समय-समय पर (प्रक्षेपों से) भरती रही है। जिसमें

परस्पर विरोधी साम्प्रदायिक बातों को पढ़कर पाठक भ्रान्तिमुक्त नहीं हो पाता। पुनरपि इसमें अच्छी बातों को परित्याग कदापि नहीं किया जा सकता।

(२) पितामह-भीष्म के गिराने में श्रीकृष्ण की दक्षता

महाभारत का युद्ध १८ दिन तक चलता रहा। इनमें प्रथम १० दिनों में भीष्म कौरव दल के सेनापति रहे। भीष्म अद्वितीय योद्धा थे, उन्हें हराना सरल कार्य नहीं था। फिर भीष्म का स्नेह पाण्डवों पर भी था। अतः युद्ध में पाण्डवों को बचाकर युद्ध करते देख दुर्योधन से न रहा गया और भीष्म से बोला – दादा ! आप बढ़ते हुए अर्जुन को नहीं रोक पा रहे क्या बात है ? तीसरे दिन भीष्म ने बहुत भयंकर युद्ध किया। पाण्डवों की सेना उनके सामने न ठहर सकी। श्रीकृष्ण यह देखकर रथ से उतर गये और शस्त्र लेकर भीष्म की तरफ दौड़े। यह देखकर अर्जुन कुछ लज्जित हुआ और वह दौड़कर श्रीकृष्ण से बोला—आप अपना प्रण न तोड़ें, मैं ही भीष्म को मारूँगा। अब मैं पूरी शक्ति से युद्ध करूँगा। श्रीकृष्ण शान्त होकर रथ चलाने लगे। इस प्रकार आठवें दिन तक युद्ध होता रहा, किन्तु हार-जीत का परिणाम सामने न आ सका। नौवें दिन फिर भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें पाण्डव सेना की बहुत हानि हुई। पाण्डव पक्ष की विजय की आशा धूल में मिलने लगी। ऐसी निराश दशा में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को फिर उपदेश दिया—

ज्यायांसमपि चेत् वृद्धं गुणैरपि समन्वितम्।
आततायिनमायान्तं हन्यात् घातकमात्मनः ।।

भीष्म अ० १०८ ।।

अर्थात् शत्रुपक्ष में यदि गुणवान् वयोवृद्ध भी व्यक्ति आततायी है, उसको मारना पाप नहीं है। श्रीकृष्ण का उपदेश सुनकर अर्जुन से नहीं रहा गया, उसने भीष्म को मारने के लिये फिर प्रतिज्ञा की और दसवें दिन शिखण्डी को आगे करके अर्जुन युद्ध में आये। कहा तो यह जाता है कि भीष्म ने शिखण्डी को देखकर बाण नहीं चलाये। परन्तु युद्ध वर्णन से स्पष्ट होता है कि अर्जुन ने भीष्म का धनुष ही काट दिया था। भीष्म ने एक प्रचण्ड शक्ति का भी अर्जुन पर प्रहार किया, जिसे अर्जुन ने बीच में ही खण्ड-खण्ड कर दिया। ऐसी दशा देखकर कौरव दल के बड़े-बड़े महारथी भी सामन आये, किन्तु अर्जुन के सामने नहीं ठहर सके। इस प्रकार १०वें दिन भीष्म पितामह को बाणों की शय्या पर लिटाकर कौरव

दल का महान् स्तम्भ धराशायी कर दिया। इस भीष्म विजय में भी निरन्तर श्रीकृष्ण की नीति-कुशलता, सावधानता और उनके सामयिक उपदेश ही कारण बने।

(३) जयद्रथ के वध और अर्जुन की प्रतिज्ञा पालन में श्रीकृष्ण का बुद्धि-चातुर्य

पितामह भीष्म के युद्ध करने में अक्षम होने पर कौरव दल का सेनापति द्रोणाचार्य को बनाया गया। दुर्योधन ने गुरु से प्रार्थना की कि आप किसी भी तरह से ऐसी युद्ध व्यूह रचना करें कि जिसमें युधिष्ठिर को जीवित पकड़ा जा सके। गुरुजी ने कहा दुर्योधन! तुम्हारी इच्छा पूरी हो सकती है, जबकि अर्जुन युद्ध में उपस्थित न रहे। दुर्योधन ने इसके लिये योजना बनाई। त्रिगर्त देश के राजा सत्य रथ ने यह प्रतिज्ञा की कि हम अर्जुन को युद्ध क्षेत्र से बहुत दूर ले जायेंगे। इन त्रिगर्त बन्धुओं (संशप्तकगण) को पाण्डवों से पुरानी दुश्मनी चली आ रही थी। अर्जुन की अनुपस्थिति में द्रोण ने ऐसे चक्रव्यूह की रचना करी, जिसे भेदन का ढंग अर्जुन ही जानता था। यह देखकर पाण्डव पक्ष में चिन्ता की लहर दौड़ रही थी। अभिमन्यु वीर इस कार्य के लिये तैयार हो गया। अर्जुन की भाँति अभिमन्यु वीरता से लड़ता हुआ चक्रव्यूह में प्रविष्ट तो हो गया, किन्तु धृतराष्ट्र के जामाता जयद्रथ ने व्यूह में पाण्डवों की सेना को नहीं घुसने दिया। इस प्रकार अन्य शस्त्रास्त्रों की सहायता से भी वन्चित होकर वीर अभिमन्यु कौरव दल के बड़े-बड़े महारथियों व सेना से अकेला ही लड़ता रहा। इस युद्ध में अनेक महारथियों को इस वीर ने यमलोक भेज दिया और अनेकों को पीछे धकेल दिया। अपनी यह दुर्दशा देखकर कौरवदल के सात महारथियों ने युद्ध नियम के विरुद्ध अभिमन्यु पर एक साथ वार कर दिया और जब तक शस्त्र रहे तब तक कोई उसका बालबांका नहीं कर सका, परन्तु शस्त्रहीन होने पर क्षत्रियों को कलंकित करने वालों ने इस वीर पर वार-पर-वार करके घायल कर दिया और कौरवों की क्रूरता का शिकार होने से यह वीर गति को प्राप्त हो गया।

अभिमन्यु की वीरता की कहानी जहाँ रोमाँचकारिणी हैं तो उसकी उसकी नृशंस हत्या हृदय विदारिणी है। पाण्डव पक्ष पर तो इस वीर के मरने पर भयंकर वज्रपात हो गया। सायंकाल संशप्त-युद्ध से लौटने पर जब अर्जुन शिविर में आये तो अभिमन्यु के बध का दुःखद समाचार मिला अर्जुन ने तुरन्त ही प्रतिज्ञा की कि "अभिमन्यु के मरने में मुख्य कारण

जयद्रथ है जिसने पाण्डव सेना को चक्रव्यूह में नहीं घुसने दिया। अतः कल सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध नहीं कर सका तो स्वयं जलती चिता में प्रवेश कर जाऊंगा।"

अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार पाकर सारा कौरवदल जयद्रथ की सुरक्षा की योजना बनाने लगा और सुबह होते ही द्रोणाचार्य ने ऐसी सूची व्यूहरचना की, जिसे कोई भेदन नहीं कर सके। और उसके चारों तरफ कौरव दल प्राचीर की भाँति खड़े हो गये। इसदिन अर्जुन ने बहुत ही घमासान युद्ध किया। युद्ध में दुःशासन, द्रोण, दुर्योधन आदि सभी महारथियों को धकेलता हुआ अर्जुन आगे बढ़ने लगा। लड़ते-लड़ते सायंकाल होने लगा तब कुछ निराशा हुई, किन्तु श्रीकृष्ण पहले ही सावधान थे। उन्होंने शंख ध्वनि करके पहले से सचेत अपने सारथी दारुक से अपना दिव्यरथ मंगवाया। श्रीकृष्ण ने —'ततोऽसृजत्तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति' (द्रोणं १४५) सूर्य को ढकने वाला अन्धेरा योग द्वारा कर दिया। कौरव इसे समझ न सके और वे सूर्य को छिपता हुआ देखने लगे। इसी बीच जयद्रथ सिर ऊंचा करके देखने लगा, अर्जुन ने तुरन्त अवसर का लाभ उठाया और अचूक निशाना साधकर ऐसा बाण छोड़ा कि जयद्रथ का सिर कट कर उसके पिता क्षत्र की गोद में जा पड़ा। अन्धेरा छिन्न-भिन्न हो गया सूर्य अभी छिपना शेष था। इस प्रकार श्रीकृष्ण के बुद्धि-चातुर्य से जयद्रथ का वध और अर्जुन की प्रतिज्ञा की सफलता देखकर पाण्डव दल में खुशी ही खुशी छा गई।

कर्ण की अमोघ-शक्ति से अर्जुन की सुरक्षा—

जयद्रथ-वध की घटना से कौरव-पक्ष में बहुत खलबली हो रही थी। उस दिन रात्रि को भी संग्राम होता रहा। कर्ण ने पांडव सेना का बहुत संहार किया। यह देखकर कर्ण का प्रतिरोध करने के लिये अर्जुन जाने लगा। श्रीकृष्ण ने दिन भर के थके अर्जुन को रोक दिया। भीम-पुत्र घटोत्कच बहुत साहसी व वीर योद्धा था, उसने स्वयं जाने की इच्छा प्रकट की। घटोत्कच ने कर्ण के साथ घमासान युद्ध किया। कहते हैं कि इन्द्र ने कर्ण को एक अमोघ शक्ति नामक अस्त्र दिया था। जिसे कर्ण ने अर्जुन के लिए सुरक्षित रखा हुआ था। परन्तु युद्ध में घटोत्कच ने कर्ण को इतना विवश कर दिया कि उसे वह अमोघ शक्ति घटोत्कच पर चलानी पड़ी और उसकी मृत्यु हो गई। महाभारत के अनुसार घटोत्कच की मृत्यु से

पाण्डव पक्ष में शोक छा गया । किन्तु श्रीकृष्ण को बहुत प्रसन्नता हुई ।[1] यह देखकर अर्जुन ने खुशी का कारण पूछा तो श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! तू समझ नहीं रहा है । आज जिस शक्ति को कर्ण ने तुम्हारे लिये रख छोड़ा था । वह घटोत्कच पर चलाई गई, जिससे तुम्हारे जीवन की रक्षा हो गई क्या यह खुशी की बात नहीं है ? अर्जुन श्रीकृष्ण का दाहिना हाथ था कृष्ण जो कुछ सोचते थे अर्जुन उसे क्रियात्मक रूप दे देता था । इस घटना को कतिपय लेखकों ने प्रक्षिप्त माना है । उनके कथनानुसार जयद्रथ वध के दिन भी अर्जुन कर्ण से युद्ध हुआ था । तब कर्ण ने वह शक्ति क्यों नहीं छोड़ी थी ।

आचार्य द्रोण के वध में श्रीकृष्ण की सूझ–

पितामह भीष्म के युद्ध से पृथक् होने पर आचार्य द्रोण ने ५ दिन कौरव सेना का संचालन किया । इन पांच दिनों में द्रोणाचार्य ने जिस वीरता व पराक्रम से कौरव सेना का संचालन किया, उससे पाण्डव सेना के अनेक महारथियों को बलि देनी पड़ी । परन्तु दुर्योधन को उससे संतोष नहीं हुआ और वह कहने लगा कि आचार्य ! आप का पाण्डवों पर बहुत स्नेह है, जिसके कारण आप पांडवों को बचा जाते हो । आचार्य द्रोण को यद्यपि यह अच्छा नहीं लगा, पुनरपि अगले दिन द्रोणाचार्य ने ऐसा भयंकर युद्ध किया, जिसमें युद्ध-नियम के विपरीत दिव्यास्त्रों का भी प्रयोग करने लगे । अपनी सेना का संहार देखकर पाण्डव श्रीकृष्ण के पास आये । श्रीकृष्ण[2] बोले–युद्ध में यदि साक्षात् इन्द्र भी आजाये, तब भी आचार्य द्रोण को जीतना सम्भव नहीं है । अतः द्रोण को जीतने के लिए धर्मयुद्ध का त्याग करो और द्रोणाचार्य को अश्वत्थामा के मरने का समाचार सुनाओ क्योंकि अपने पुत्र अश्वात्थामा की मृत्यु सुनकर द्रोण युद्ध नहीं कर सकेंगे । श्रीकृष्ण के इस सुझाव को सम्भव है कि लोग श्रीकृष्ण के चरित पर कलंक भी बतायें, किन्तु यह उन्होंने युद्ध-नीति के अनुकूल ही किया था । क्योंकि द्रोणाचार्य भी[3] धर्म-विरुद्ध दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे थे । इसी प्रसंग में विश्वामित्र, भारद्वाज आदि ऋषि भी द्रोण से प्रार्थना करते दिखाये हैं कि

---

१. द्र० द्रोण पर्व १८०।६। २. द्र० द्रोण पर्व १९०।१०, १२।

३. इसी प्रकार धर्म विवाद कार्यों में अभिमन्यु का वध, भूरिश्रवा द्वारा सात्यकि को गिरा देख तलवार चलाना, भूरिश्रवा द्वारा सात्यकि के दश पुत्रों की हत्या करना, इत्यादि कार्य द्रोणाचार्य देखते देखते हुए थे ।

तुम अधर्म से युद्ध कर रहे हो। अतः अधर्मी को अधर्म से जीतने को श्री-कृष्ण ने बुरा नहीं माना। और स्पष्ट रूप में कहा—"द्रोण ने पाप का सहारा लिया है। उसी पाप द्वारा उसका हनन होना चाहिए। द्रोण जहाँ विद्वान् है। शूर है, वेदज्ञ है, वहाँ उसकी दुर्बलता है सन्तान का मोह। कोई उसे यह सुना दो-तेरा पुत्र मर गया, बस वहीं हथियार रख देगा।" श्रीकृष्ण ने यह उपाय अपने अनुभव से बताया था। अर्जुन को यह अधर्म नीति रुचिकर नहीं लगी, किन्तु भीम तैयार हो गया और अपनी सेना के एक अश्वात्थामा नामक हाथी को मरवा कर शोर मचवा दिया अश्व-त्थामा[1] मारा गया। यह ध्वनि द्रोण के कानों तक पहुँची, सहसा उन्हें विश्वास नहीं हुआ किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर, जो कभी असत्य नहीं बोलते थे, उनके मुख से भी यही ध्वनि सुनकर द्रोण के हाथों ने शस्त्र उठाने से इन्कार कर दिया। द्रोण रथ में ही ध्यानावस्थित से हो गये। धृष्टधुम्न ने इसे अच्छा अवसर देखकर द्रोण का सिर धड़ से अलग कर दिया। अर्जुन ने गुरू को बचाने का भी प्रयास किया, किन्तु उससे पूर्व ही द्रोण की इह लीला समाप्त हो गई थी। इस प्रकार, शठे शाठ्यं समाचरेत्, की नीति बताकर श्रीकृष्ण ने आचार्य द्रोण को समाप्त कराया।

(६) श्रीकृष्ण ने अर्जुन की धर्म संकट से रक्षा की—

आचार्य द्रोण के पश्चात् कर्ण को कौरव सेना का सेनापति बनाया गया। कर्ण की इच्छा से श्रीकृष्ण के तुल्य अश्वविद्या में निपुण शल्य को कर्ण का सारथी बनाया गया। आज के युद्ध में अर्जुन संशप्तकों से युद्ध करने लगा और मुख्य रणक्षेत्र का कार्य भीम ने संभाला। भीम की सहा-यता के लिये युधिष्ठिर भी युद्ध में आ धमके। अवसर पाकर कर्ण ने युधिष्ठिर पर धावा बोल दिया और घायल होकर युधिष्ठिर को अपने शिविर में आना पड़ा। अर्जुन संशप्तकों और अश्वात्थामा से युद्ध करके जैसे ही भीम की तरफ बढ़ा, वहाँ उसे युधिष्ठिर नहीं दिखाई दिये। अर्जुन को इस बात की चिन्ता हुई। किसी से बड़े भाई का समाचार न पाकर अर्जुन युधिष्ठिर के शिविर में जा पहुंचे। युधिष्ठिर अपनी पराजय से अत्यन्त दुःखी थे। शरीर के घावों का तो उपचार हो ही रहा था, वे कर्ण का समाचार जानना चाहते थे।

सहसैव अर्जुन को अपने सम्मुख देखकर और कर्ण को जीवित जान-

---

१. द्रोण पर्व १९१-१९२ अ०

कर युधिष्ठिर को क्रोध आ गया और उन्होंने अर्जुन को खूब धमकाया। साथ ही क्रोधवश 'धिक् गाण्डीवम्' कहकर गाण्डीव को भी धिक्कारा'[1]। गाण्डीव की निन्दा सुनकर अर्जुन को बहुत गुस्सा आया, क्योंकि उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि जो गाण्डीव की निन्दा करेगा तो मैं तलवार से उसका सिर काट दूंगा। अर्जुन ने युधिष्ठिर को मारने के लिए तलवार निकाल ली। इस समय श्रीकृष्ण यदि अर्जुन को समझाकर शांत नहीं करते तो परिणाम कुछ और ही हो जाता। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि तुम धर्म के तत्व से अनभिज्ञ होने से मूर्ख हो। धर्म की सूक्ष्म गति को नहीं जानते। तुमने बाल्यकाल में जो प्रतिज्ञा की थी, उस पर जोर देना मूर्खता है। तुम क्रोधवश धर्म की मर्यादा को भूलकर गुरु तुल्य बड़े भाई के प्रति अपमानपूर्ण शब्द बोलकर मारने को उद्यत हो गये हो इत्यादि। उसके बाद अर्जुन को अपने किये पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह आत्महत्या के लिए ही उद्यत हो गया। तब भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया और धर्मसंकट का उचित समाधान बताकर अर्जुन की रक्षा की।

(७) युद्धकालीन धर्म शिक्षा देकर वीर कर्ण का वध कराना—

धर्मराज युधिष्ठिर का आशीर्वाद लेकर अर्जुन फिर युद्ध क्षेत्र में आ गये और कर्ण को युद्ध के लिये ललकारा। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बहुत सावधान किया कि कर्ण को पराजित करना सरल कार्य नहीं है। इसलिये पूर्णतः सावधान होकर युद्ध करना है। कर्ण भी अपना प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन को ही मानते थे। दोनों वीर आमनेसामने आ धमके। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ही वीर आक्रमण तथा आत्मरक्षा करते हुए युद्ध में लगे हुए थे। कर्ण ने एक सर्पाकार बाण ज्या पर चढ़ाकर ऐसा फेंका कि हाहाकार मच गया। परन्तु यहाँ भी श्रीकृष्ण का कुशल सारथित्व काम में आया और कर्ण के इस भयंकर वार को घोड़ों को जानुओं के बल बैठाकर विफल कर दिया। रथ नीचे होने से कर्ण का बाण मुकुट से टकराकर निकल गया। अर्जुन का सिर बाल-बाल बच गया। इसके बाद अर्जुन के बाणों से कर्ण मूच्छित हो गया, अर्जुन ने इस अवसर का भी कोई लाभ नहीं उठाया। सचेत होने पर फिर संग्राम छिड़ गया। कर्ण के रथ का पहिया पृथिवी में धंस गया। कर्ण रथ से उतर कर पहिये को निकालने लगा और अर्जुन को कहा कि ठहर जा, अभी युद्ध मत कर, क्योंकि इस प्रकार युद्ध करना तुम्हारी कायरता होगी और धर्म विरुद्ध कहलायेगा। कर्ण के मुख से धर्म-

१. द्र० कर्णपर्व अ० ६८।२६।

की दुहाई सुनकर श्रीकृष्ण ने जो कर्ण को धमकाया[1] है, वह अलौकिक ही है। श्रीकृष्ण बोले—अरे राधासुत कर्ण ! तुम्हारे समान नीच मनुष्य आपत्ति में ही प्रारब्ध की निन्दा और धर्म का स्मरण करते हैं। जब शकुनि ने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया और द्यूतकर्म से अनभिज्ञ युधिष्ठिर को छल से द्यूत में जीता था, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था ? १३ वर्ष तक घोर वनवास जन्य कष्टों को सहने वाले पाण्डवों का राज्य वापिस न करके अन्याय करना क्या धर्मानुकूल था ? तुम्हारी सम्मति से दुर्योधन ने भीम को विष खिलाकर नदी में फिकवा दिया था, तब धर्म कहाँ गया था ? वारणावतनगर में लाक्षागृह बनाकर सोते हुए पाण्डवों को जलाने का षड्यन्त्र बनाने में तुम्हारा धर्म कहां गया था ? सभा में रोती हुई द्रौपदी को देखकर सभी दुष्ट कौरव हँस रहे थे, तब तुमने अधर्मपूर्ण कार्य को देखते हुए कुछ भी विरोध नहीं किया और सात महारथियों के साथ मिलकर तुमने भी अभिमन्यु को मरवाने में पूरा साथ दिया, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था ? आज तू हमें धर्म का दुहाई देता है, ऐसा कहकर अर्जुन को युद्धकालीन धर्म की शिक्षा देकर आदेश दिया कि इस प्रकार आपत्तिग्रस्त शत्रु का युद्ध में वध करना पाप नहीं है, प्रत्युत पुण्य है, अतः इस अवसर को व्यर्थ मत खो। कर्ण भी श्रीकृष्ण की बातों से लज्जित सा हो रहा था और अर्जुन ने निरन्तर बाण-सन्धान करके कर्ण को घायल करके पृथिवी पर गिरा दिया।

(८) श्रीकृष्ण ने दुर्योधन का वध भी युद्धनीति से करवाया—

वीर कर्ण की मृत्यु के पश्चात् कौरव सेना के सेनापति शल्य बना, किन्तु वह युधिष्ठिर के हाथों से मारा गया। अब कौरवदल के चार महारथी ही शेष रह गये थे अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और दुर्योधन। इनमें से दुर्योधन निराश और मृत्यु के भय से द्वैपायन[2] तालाब में जाकर छिप गया। समस्त संग्राम का मूल कारण तो दुर्योधन ही था, जिसके कारण महाभारत का भयंकर संग्राम हुआ। पाण्डव उसे कैसे छोड़ सकते थे। गुप्तचरों से पता लगाकर पाण्डव और श्रीकृष्ण तालाब पर ही जा पहुँचे। और धर्मराज युधिष्ठिर ने दुर्योधन को युद्धार्थ ललकारा—हे दुर्योधन ! स्त्रियों की भांति जल में छिपकर और युद्ध से पलायन करके

१. द्र० कर्णपर्व ९० से ९२ अ०।

२. द्र० शल्यपर्व अ० १७।

अपने वंश को क्यों कलंकित करते हो। बाहर आओ और युद्ध करो। यदि तू इस युद्ध में से किसी एक को भी मार देगा, तो हम अपनी हार मानकर और सब राजपाट तुझे देकर जंगल में चले जायेंगे।" युधिष्ठिर की ललकार सुनकर दुर्योधन से नहीं रहा गया और वह अपनी मृत्यु निकट समझकर भी तालाब से निकल आया। श्रीकृष्ण को युधिष्ठिर की उदारतापूर्ण किन्तु असामयिक नासमझी की बातों एवं शर्त को सुनकर क्रोध भी आया। जो संग्राम इतनी कठिनाई से जीता है, उसे एक द्वन्द्व युद्ध पर ही हार-जीत मानकर खो देना कौन सी बुद्धिमत्ता हो सकती है। एक तरह से द्यूत की भांति युधिष्ठिर का यह दूसरा जुआ था। और यदि गदा-युद्ध में धुरंधर दुर्योधन भीम को छोड़कर किसी अन्य को युद्धार्थ ललकारता, तो कैसी स्थिति हो जाती ? किन्तु श्रीकृष्ण कुछ कर नहीं सकते थे, बाण धनुष से छूट चुका था। परन्तु यह अच्छा हुआ कि दुर्योधन से स्वयं ही युद्धार्थ भीम का चयन किया। इस समय तक बलराम भी देशाटन करके उसी स्थल पर पहुँच चुके थे। दुर्योधन बलराम का गदायुद्ध में शिष्य था। दोनों ही वीर गदायुद्ध के महारथी थे। भीम श्रीकृष्ण व युधिष्ठिर से दुर्योधन को पराजित करने का वचन देकर युद्ध में उतरे। उस समय अर्जुन ने पूछा कि इन दोनों में विजय किसकी होगी ? श्रीकृष्ण बोले-बलवान् तो भीम अधिक है किन्तु गदायुद्ध के दांव दुर्योधन अधिक जानता है। नियमपूर्वक युद्धमें भीम का जीतना कठिन है। हां यदि भीम को अपनी प्रतिज्ञा स्मरण आ गई, जो उसने द्रौपदी का सभा में अपमान होने पर की थी कि मैं दुर्योधन की जांघ गदा से तोड़ूंगा तो विजय भीम की हो सकती है। यद्यपि अर्जुन युद्ध नियमों का बहुत ध्यान रखते थे किन्तु युद्ध में कौरवों के द्वारा किये गये अधर्मपूर्ण कार्यों से अर्जुन भी धर्म युद्ध पर इतने दृढ़ नहीं रहे थे। अर्जुन ने जब भाई भीम को थका हुआ समझा तो जांघ पर हाथ मारकर भीम को प्रतिज्ञा स्मरण कराई। गदायुद्ध में नाभि से नीचे मारना वर्जित होता था, किन्तु प्रतिज्ञा स्मरण होते ही भीम ने दुर्योधन की जांघ पर पूरे बल से गदा से प्रहार किया और दुर्योधन घायल होकर अन्तिम श्वास लेने लगा। यह देखकर बलराम क्रोध में आ गये और भीम को मारने को उद्यत हो गये। उस समय श्रीकृष्ण ने समझाकर बलराम को शान्त किया और पापी दुर्योधन का अन्त युद्धनीति से ही करा कर धर्म पक्ष को विजय दिलाई।

अश्वमेधयज्ञ और धर्म साम्राज्य की स्थापना के उद्देश्य में सफलता

दुर्योधन के मृत्यु के बाद महाभारत का संग्राम समाप्त हो गया।

पाण्डव अपने शिविरों में आ गये। श्रीकृष्ण ने पहले अर्जुन को रथ से उतारा और बाद में स्वयं उतरे। उतरते ही रथ में आग लग गई और जल[1] कर भस्म हो गया। अर्जुन द्वारा रथ जलने का कारण पूछने पर श्रीकृष्ण बोले अर्जुन ! यह रथ तो द्रोणादि के दिव्यास्त्रों से पहले ही जल जाता किन्तु मेरे योग[2] से ही बचा हुआ था। इसके पश्चात् श्री कृष्ण कौरवों के शिविर में गये और वहां विलाप करते हुओं को धैर्य बंधाया फिर हस्तिनापुर जा कर गान्धारी और धृतराष्ट्र जो अपने पुत्र की मृत्यु से बहुत दुखी थे उन्हें समझाना सरल नहीं था। श्रीकृष्ण ने इनको भी सान्त्वना दी और पाण्डवों के शिविर में आ गये। श्रीकृष्ण को कौरव दल में बचे कृपाचार्य, कृतवर्मा अश्वत्थामा से ही भय था कि यह छिपकर हमला भी कर सकता हैं। हुआ भी ऐसा ही, अश्वत्थामा ने निश्चिन्त सोते हुओं पर[3] हमला कर दिया और अपने पिता के हत्यारे धृष्टद्युम्न और पाण्डवपुत्रों का वध कर डाला।

युद्ध में विनाश देखकर (युद्ध समाप्त होने पर) युधिष्ठिर को बहुत वैराग्य हो गया, उसे समझना सरल नहीं था, श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को साथ लेकर वाण शय्या पर पड़े भीष्मपितामह के पास ले आये, वहाँ भीष्म के उपदेश से कुछ शान्ति हुई। व्यास जी तथा श्री कृष्ण की सम्मति से अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया गया। उसका उद्देश्य यही था कि समस्त देश, जो दो हिस्सों में विभक्त हो गया था, उसे फिर एकता सूत्र में बाँधकर राज्य की शक्ति बढ़ाना। इस यज्ञ में विजयी और परास्त सभी राजाओं ने भाग लिया। श्रीकृष्ण बीच में द्वारिकापुरी चले गये थे और युधिष्ठिर के निमन्त्रण पर फिर हस्तिनापुर आ गये। इस बार के महायज्ञ में आये सभी राजा प्रसन्न थे। द्वेष और वैमनस्य तो किसी के मन में भी नहीं रहा था। धर्मराज युधिष्ठिर को देश के साम्राज्य के सिंहासन पर बैठाकर श्रीकृष्ण ने अपने जीवन के प्रमुख लक्ष्य (धर्मराज्य की स्थापना करना) में सफल होकर वापिस द्वारिकापुरी आ गये। इसके बाद महा-भारत के अनुसार श्रीकृष्ण के साथ पांडवों की भेंट हुई हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

---

(१) द्र० शल्य पर्व ३२/१३।

(२) यहां 'योग' शब्द पारिभाषिक है, अतः इसे कोई चमत्कार नहीं समझना चाहिए।

(३) यह हमला पांचालों के शिविर पर किया गया था।

श्रीकृष्ण के जीवन का अन्तिम समय

महाभारत-संग्राम के बाद श्रीकृष्ण के विषय में ऐसा कहा जाता है कि वे ३६ वर्ष तक जीवित रहे और उनका शेष समय द्वारिकापुरी में ही व्यतीत हुआ। जब श्रीकृष्ण समयानुसार वृद्ध हो चुके तब उनके प्रभाव के कम होने तथा यादवों में घमण्ड, राग, द्वेष तथा मदिरा पान आदि इतना बढ़ गया कि एक प्रकार से धर्म की सभी मर्यादायें छिन्न-भिन्न होने लगी। यदुवंशी परस्पर लड़ने लगे और उत्पात बढ़ने लगे। महाभारत के मौसल-पर्व (अ०१) में यादवों के नाश और श्रीकृष्ण के स्वर्गगमन की कथा इस प्रकार मिलती है।

"एक बार विश्वामित्र कण्व और नारद ये तीनों ऋषि घूमते-फिरते द्वारिकापुरी आ गये। उस समय यादव बहुत उद्दण्ड हो चुके थे। उन्होंने सत्यभामा के पुत्र साम्ब को स्त्री की भांति खूब सजाया और ऋषियों के पास ले जाकर दिल्लगी करते हुए बोले—यह स्त्री गर्भवती है, आप अपने योगबल से बतायें कि इस स्त्री के क्या बच्चा होगा—(पुत्र या कन्या)। यादवों की धृष्टता को ऋषि समझ गये और उन्होंने दुःखी होकर कहा—यह स्त्री न तो पुत्र को जन्म देगी और न ही कन्या को। इसके पेट से एक लोहे का मूसल निकलेगा, जिससे यादव वंश का नाश हो जाएगा।"

उपर्युक्त आख्यान सत्य है या असत्य, हम विवाद को छोड़कर इतना ही कह सकते हैं कि इससे यादवों की बढ़ती हुई उद्दण्डता का पता अवश्य लगता है। जिस महापुरुष के उद्योग एवं वीरता से यादव वंश कंस और जरासन्ध जैसे नृशंस राजाओं से भी सुरक्षित रहा, वही आज श्रीकृष्ण के अनुशासन में नहीं रहा।

श्रीकृष्ण अपने ही वंश वालों से दुःखी होकर बलराम के साथ वन में वानप्रस्थ होकर रहने लगे। अपना समस्त समय ईश्वर के ध्यान में ही बिताने लगे। इसी बीच बलराम भी योग के द्वारा जब शरीर त्याग गये तो श्रीकृष्ण बहुत दुःखी रहने लगे। उन्हें भी अब जीने की इच्छा नहीं रही। एक दिन अश्वत्थ वृक्ष के नीचे योग निन्द्रा में श्रीकृष्ण लेटे हुए थे। उस समय दूरस्थ जरा नामक शिकारी ने श्रीकृष्ण को मृग समझकर बाण का प्रहार कर दिया, उससे श्रीकृष्ण घायल हो गये। शिकारी को निकट आने पर अपनी भूल पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह चरणों में पड़कर क्षमा मांगने लगा। धर्म रक्षक दयालु श्रीकृष्ण के प्रसन्न मन से उसे अभय दान देकर क्षमा कर दिया और अपने पार्थिव शरीर को योग बल से त्याग

कर अमरता को प्राप्त कर परमपिता परमेश्वर का आश्रय लिया। श्री कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ होकर जीवन भर अधर्मी शत्रुओं पर तथा अन्त में मृत्यु पर भी विजय पायी। धन्य है ऐसे महापुरुष, जिनका समस्त जीवन ही धर्म की रक्षा करने और अधर्म के नाश में व्यतीत हुआ। ऐसे दिव्यविभूति पुरुष विरले ही होते हैं, कि जो कारागार की बन्द कोठरियों में जन्म लेकर भी न केवल स्वयं ही अपने भाग्य निर्माता बनकर स्वातन्त्र्य-सुख का भोग करते हैं, प्रत्युत जन-सेवक होकर विश्व के जनमानस पर छाई परतन्त्रता की दृढ़ बेडियों को काटकर स्वातन्त्र्य-सुख के स्वच्छ वातावरण में विचरण करने के अधिकारी बना देते हैं। ऐसे कर्मयोगी सच्चे प्राप्त पुरुष के प्रति उनके जन्म-दिवस पर हम सभी आर्य जन प्रणत-श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और उनके आदर्श सच्चरित्र को पढ़कर अपने और राष्ट्र के जीवन में उनके गुणों को अपनाने के लिये प्रतिज्ञा करते हैं। श्रीकृष्ण का जीवन एक प्रज्वलित दीपक है, और विजय का महास्तम्भ है। जब तक यह जीवनदीपक प्रज्जवलित रहेगा, तब तक मिथ्याभ्रान्तिजन्य काली घटायें छिन्न-भिन्न होंगे से विश्व को कल्याण मार्ग का पथ प्रदर्शन होता रहेगा। महर्षि व्यास ने और वेद में ठीक ही लिखा है—

(१) यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ।। महाभारत ।।

(२) यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना ।।यजुर्वेद ।।

(३) यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।। महाभारत ।।

शंका-समाधान

(१) क्या श्रीकृष्ण भगवान् थे ? यदि नहीं तो उन्हें भगवान् शब्द से क्यों सम्बोधित किया जाता है :

(उत्तर) आजकल हम भगवान् शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं, इसीलिये हमारे पूर्वजों (राम, कृष्ण आदि) के साथ प्रयुक्त भगवान शब्द से हमें ईश्वर विषयक सन्देह होने लगता है। यथार्थ में जैसे हम बल सम्पन्न को बलवान् और धन सम्पन्न को धनवान् कहते हैं। इसका आशय बल वाला या धन वाला ही होता है, उसी प्रकार जो भग सम्पन्न (भग वाला) है, वह भगवान् कहला सकता है। संस्कृत भाषा में भग शब्द के निम्नलिखित छः अर्थ हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥ (विष्णु पुराण)

अर्थात् सर्वविध ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य ये छः अर्थ 'भग' शब्द के हैं। इनमें से एक भी गुण हो तो भगवान कहला सकता है। श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों में तो उनमें से प्रायः सभी गुण थे, इसी दृष्टि से उन्हें भगवान् शब्द से कहा गया है। यह तो एक विशेषण शब्द है, जो जहां भी विशेष्य के साथ प्रयुक्त होगा वहां उसकी विशेषता ही बतायेगा।

(२) क्या आर्य समाज या महर्षि दयानन्द श्रीकृष्ण या श्री राम को नहीं मानते है ? अथवा उनकी निन्दा करते हैं ?

(उत्तर) आर्यसमाज या महर्षि के विषय में यह एक बहुत बड़ी भ्रान्ति साम्प्रदायिक स्वार्थी लोगों ने फ़ैलायी है। यथार्थ में आर्य समाज या महर्षि दयानन्द ही श्री कृष्ण या श्री राम के सच्चे स्वरूप को मानते हैं, दूसरे तो अन्धभक्त होकर ही लकीर के फकीर बने हुए हैं। ये दोनों महा-पुरुष तो अपने-अपने समय में वीरता, धार्मिकता, धीरता, सज्जनतादि

गुणों के साक्षात् प्रतिभूति थे। आज हम उनके चित्र के ही पुजारी बन गये हैं, चरित्र के नहीं। आर्य समाज उनके चरित्र का सच्चा पुजारी है। इतना ही नहीं, इन साम्प्रदायिक लोगों ने श्रीकृष्ण जैसे आप्त पुरुषों पर जनसामान्य से भी निम्न स्तर के तरह-तरह के दोष लगाये हैं, जैसे कुब्जा-दासी से श्रीकृष्ण का समागम, स्नान करती हुई गोपिकाओं के कपड़े उठा कर भाग जाना, या उनके संग जल क्रीड़ायें करना, मक्खन चोर, बहुत सी पत्नी वाला, राधा जैसी पत्नी बताकर परस्त्रियों से प्रेम बताना इत्यादि।

(३) **क्या श्रीकृष्ण की १६००० रानियाँ थीं ?**

(उत्तर) यह बात सर्वथा असत्य है। सम्पूर्ण महाभारत को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण की एक ही पत्नी थी, जिसका नाम रुक्मिणी था। भागवत पुराण में प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा नरकासुर को मारकर श्रीकृष्ण ने १६००० राजकुमारियों से विवाह किया, ऐसा वर्णन है किन्तु यह सब घटना काल्पनिक है। श्री बंकिम बाबू ने इसका कारण स्पष्ट करते हुए लिखा है कि श्रीकृष्ण के समय प्राग्ज्योतिष का राजा नरकासुर नहीं था। वहाँ का राजा तो भगदत्त था जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में अर्जुन के द्वारा मारा गया था। और विष्णु पुराण (४।१५।३६) के अनुसार तो श्रीकृष्ण के १८०००० पुत्र भी लिखे हैं। पाठक विचार करें कि इसी पुराण में श्रीकृष्ण की कुल आयु १२५ वर्ष बताई है। क्या इतनी आयु में इतने पुत्र सम्भव हो सकते हैं ? पर गप्पी को तो गप्प मारने से मतलब चाहे उसकी संगति लगे या न लगे। महाभारत में श्रीकृष्ण के एक ही पुत्र प्रद्युम्न का वर्णन आता है।

(४) **क्या श्रीकृष्ण की सत्यभामा, आदि आठ पत्नियों का बात मिथ्या ही है ?**

(उत्तर) हाँ ! सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि इनका भी महाभारत में कहीं उल्लेख नहीं है। महाभारत के पीछे पुराणकारों ने ही ऐसी मिथ्या, कल्पित तथा असंभव बातें लिखकर श्रीकृष्ण जैसे एक पत्नीव्रती पर भी मिथ्या दोष लगाये हैं।

(५) **क्या श्रीकृष्ण बालकाल में दही व मक्खन चुराचुराकर खाया करते थे?**

(उत्तर) यह बात भी मिथ्या है। श्रीकृष्ण का बाल्यकाल नन्द बाबा के घर पर बीता था। और नन्द बाबा के घर पर कितनी गायें

थीं, उसका वर्णन ऐसा मिलता है—'नौ लाख धनु नन्द बाबा के।" पाठक विचार करें कि जिसके घर पर नौ लाख गायें हों, उस घर में दूध-दही व मक्खन की कितनी भरमार होगी? क्या उस घर में बच्चों को दही मक्खन आदि की कमी हो सकती है? फिर बच्चे क्यों पड़ोसियों के घर दही मक्खन चुराने जायेंगे। इन गप्पी पुराणकारों के भी श्री कृष्ण जैसे प्राप्त पुरुष को चोर ही नहीं, प्रत्युत 'चौराग्रगणण्यम्' चोरों का सरदार कह कर बदनाम करने में लेशमात्र भी लज्जा नहीं आयी, यह महान् आश्चर्य है।

(६) **राधा कौन थी? राधा का कृष्ण के साथ क्या सम्बन्ध था? हम सीताराम की भांति राधाकृष्ण का प्रयोग क्यों करते हैं? क्या राधा श्रीकृष्ण की पत्नी थी?**

(उत्तर) जैसे श्रीराम के साथ सीता शब्द का प्रयोग उनकी पत्नी के कारण होता है, वैसे ही 'राधाकृष्ण' के प्रयोग को देखकर जनसामान्य में यह भ्रान्ति अवश्य होती है कि राधा श्रीकृष्ण की पत्नी थी। परन्तु योगेश्वर श्रीकृष्ण पर पुराणों के लेखकों ने जैसे अन्य मिथ्या दोष लगाये हैं—गोपाल[1]: कामिनीजारश्चौर जार शिखामणिः अर्थात् श्रीकृष्ण परस्त्री-गामी, चोर तथा व्यभिचारियों में शिरोमणि हैं। ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के साथ प्रेयसी के रूप में राधा का प्रयोग भी किया गया है। पूरे महाभारत में श्रीकृष्ण के साथ राधा का कहीं प्रयोग नहीं मिलता और न उनके साथ राधा का कोई सम्बन्ध ही माना है। भागवतपुराण को पंचमवेद ही वैष्णव मानते हैं, उसमें, विष्णु और हरिवंश पुराण में भी राधा का प्रयोग श्रीकृष्ण के साथ नहीं मिलता है। हाँ! महाभारत में कर्ण को पालने वाली अधिरत सूत की पत्नी का नाम राधा तो आया है। केवल ब्रह्मवैवर्त्त पुराण राधा का नाम आया है। इस पुराण में राधा के श्रीकृष्ण के साथ अनुचित सम्बन्धों का जो अश्लील व घृणित रूप दिखाया गया है, उसको देखकर तो लज्जा को भी लज्जा आ जाये, किन्तु पुराण बनाने वाले को लज्जा नहीं आयी। राधा कौन थी? इसका उल्लेख भी इस पुराण[2] में आया है—राधा वृषभानु नामक वैश्य की कन्या थी, उसका विवाह रायाण वैश्य के साथ हुआ था। और रायाण श्री कृष्ण की माता यशोदा का भाई था, इसलिये श्रीकृष्ण का मामा लगता था। इस सम्बन्ध से राधा श्रीकृष्ण की मामी लगी। परन्तु इस पुराण को बनाने वाले ने

१. द्र० 'गोपाल सहस्रनाम' २. द्र० ब्रह्म वैवर्त्तपुराण प्रकृतिखण्ड २ अ० ४९।

श्रीकृष्ण और राधा का जो चित्रण (ब्रह० वै० ख० ४ अ० १६) किया है, वैसा कोई व्यभिचारी व्यक्ति ही लिख सकता है और मन्दिरों में राधा-कृष्ण की मूर्ति बनाकर पूजा का रूप भी अत्यन्त परवर्त्ति है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने "मध्यकालीन धर्म साधना" पुस्तक में इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—'प्रेम विलास' और 'भक्ति रत्नाकार' पुस्तकों के अनुसार वृन्दावन में श्रीकृष्ण के साथ राधा की मूर्ति या पूजा नहीं होती थी। इसका अभिप्राय यह है कि इन पुस्तकों से भी पीछे राधाकृष्ण की मूर्ति की और पूजा होने लगी है। इन पुस्तकों का समय लगभग ४२४ वर्ष पूर्व हैं, अतः राधाकृष्ण की कल्पना भी उसके बाद की है, जिसे किसी कामुक व्यक्ति ने ही बनाया है। आजकल मन्दिरों व कीर्तनों में श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का कोई नाम नहीं लेता और इस कल्पित राधा की पूजा या कीर्तन ही होता है, यह बहुत ही दुर्भाग्य की बात है।

(७) श्रीकृष्ण को पौराणिक लोग ईश्वर का अवतार मानते हैं। क्या महारत में कहीं श्रीकृष्ण का अवतार रूप में वर्णन मिलता है?

(उत्तर) श्रीकृष्ण की राजसूय यज्ञ के अवसर में भीष्मपितामह ने यह कहकर प्रशंसा की है कि श्रीकृष्ण वेद-वेदांगों के पूर्ण ज्ञाता थे। वेदों का ज्ञाता व्यक्ति वेद-विरुद्ध बातें कैसे कह सकता है। वेद में ईश्वर को अकाय शरीर रहित और अज-अजन्मा कहा गया है। अतः ईश्वर का अवतारवाद तो कभी सम्भव ही नहीं है। और श्रीकृष्ण के भक्तों को कम से कम श्रीकृष्ण की बात तो माननी ही चाहिये। श्रीकृष्ण ने महाभारत में कहीं अपने को ईश्वर नहीं कहा, प्रत्युत श्रीकृष्ण[1] स्वयं प्रातःसायम् ईश्वर-भक्ति करते हुए मिले हैं। और एक स्थान पर तो अपने ईश्वर न मानने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

अहं हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारतः।
दैवं तु न मया शक्यं कर्म कर्त्तुं कथंचन॥

उद्योग० प्र० ७९॥

अर्थात् मैं पूर्ण पुरुषार्थ के साथ कार्य करूंगा, परन्तु दैव-ईश्वरीय कार्यों में मेरा कुछ भी वश नहीं है। अब पाठक स्वय विचार करें कि श्रीकृष्ण की बात माननी चाहिये या दूसरे गप्प मारने में दक्ष पुराणों के रचयिताओं की?

---

१. द्र० अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह॥ उद्योग० ३।२१॥

श्री कृष्ण जन्माष्टमी

अष्टमी प्रति वर्ष आती ।

भाद्रपद की तमाच्छादित यामिनी का तम हठाती ।।
युगों पहले एक द्वापर, की निशा थी वह भयंकर ।
जब कि कारामध्य आय, (युग पुरुष) था इस अवनि पर ।।
किये जीवन भर सतत थे, क्रान्ति के ही कर्म उसने ।
'अनय से संघर्ष' कोही, था बनाया धर्म उसने ।।
तभी तो भगवान् कहकर सृष्टि उसको सिर झुकाती ।।१।।
अष्टमी प्रति वर्ष आती ।।

क्रान्तिकारी युग पुरुष की, जीवनी से सीख लेकर ।
प्रेरणा कर प्राप्त हम भी, बढ़े जीवन में निरन्तर ।।
यही सबसे श्रेष्ठ पूजन, यही चरणों पर सुमन दल ।
व्यर्थ आडम्बर तथा, उपवास व्रत का ढोंग केवल ।।
'कृष्णा' से हमको मिली है, आह ! कितनी श्रेष्ठ थाती ।।२।।
अष्टमी भी प्रति वर्ष आती ।।

[श्री मयङ्क]

योगिराज श्रीकृष्ण का पावन स्मरण

[स्व० स्वामी धर्मानन्द विद्यामार्त्तण्ड]

योगीराज श्री कृष्णचन्द्र का, श्रद्धापूर्वक स्मरण करें।
उनके पावन गुण-सौरभ को, अपने अन्दर ग्रहण करें ॥१॥

उनका जीवन यज्ञ-रूप था, जनता-हित में रहा समर्पित।
हम भी उनकी यज्ञ-भावना, अपने अन्दर भय भरें ॥२॥

धर्म के रक्षक बने वे, राजनीति मर्मज्ञ महान्।
ज्ञानी ध्यानी योगी गायक, क्यों न उनका मान करें ॥३॥

रखा जिसने जग में आकर, सच्चा कर्म-योग आदर्श।
किये सदा निष्काम कर्म ही, हम उनका अनुसरण करें ॥४॥

विद्या विनय युक्त विप्रो में, वैसे ही चण्डालों में।
समदर्शी-पण्डित होते इस, समता को हम हृदय धरें ॥५॥

तेरा है अधिकार कर्म में, कभी न उसके फल में है।
उनके इस उपदेश-रत्न को, ग्रहण करें निर्भय विचरें ॥६॥

गुण-गण के सागर होकर भी, जिनमें नहीं मद का लवलेश।
विप्रों के चरणों को धोया, जिन उनका गुणगान करें ॥७॥

होकर सर्वमान्य राजा भी, निर्धन से न विसारा प्रेम।
उसके सारे कष्ट निवारे, ऐसे नरवर को सिमरें ॥८॥

धर्म-राज्य स्थापित करना ही, जिनका रहा मुख्य उद्देश्य।
धर्मोद्धारक, पापनिवारक, ऐसे योगिवर को सिमरें ॥९॥

गीतामृत का पान कराकर, किया पार्थ को अनुपम शूर।
इससे सब जगके उपदेष्टा, शिक्षक-वर का मान करें ॥१०॥

यज्ञ-योग की ज्योति जलाना, सबको जिसने सिखलाया।
योगिराज के चरणों में हम, श्रद्धांजलि सप्रेम धरें ॥११॥

श्री कृष्ण-नीति

[कविवर 'प्रणव' शास्त्री एम०ए० शास्त्री सदन, रामनगर कटरा आगरा]

कृष्ण की विचारधारा, धरा पर बहेगी तभी,
जनता को सुख-शान्ति, चैन मिल पायेगा।
उसकी निराली नीति रीति की प्रतीति से ही,
सत्य जीत ज्ञान को सम्मान मिल पायेगा ॥
इस जैसी दृढ़ता, चतुरता, सुविशालता से,
सिद्धियों का स्वर्णिम-कमल खिल पायगा।
कृष्ण की कठोरता के कौशल-कला के बिना,
बढ़ता आतङ्क का न दुर्ग हिल पायगा ॥
कृष्ण ने कभी न समझौते का बजाया ढोल,
पोल में घुसा, नहीं घुसने किसी को दिया ॥
जनता के दुःखों की कहानी से दुःखी रहा,
दुष्ट अन्यायी को भी टिकने नहीं था दिया ॥
कंस, जरासन्ध, शिशुपाल जैसे घातकों का,
निश्चय निडरता से पापियों का वध किया ॥
अन्ध, अध अन्याय को झुकाया, कभी न शीश,
जब तक जिया कृष्ण शान से सदा जिया ॥
जनता-जनार्दन की सेवा का जो व्रत लिया,
कृष्ण ने उसे तो श्रद्धा भक्ति से निभाया था।
राष्ट्र-द्रोह, फूट की बेल बढ़ने न दी थी,
एक धर्म राज्य का स्वप्न ही सजाया था ॥
बड़े-बड़े क्रूर शूरवीरों के थे कान काटे,
जगती में पौरुष का सिक्का ही जमाया था।
मानता है विश्व पूर्ण दुःखों से दिलाने मुक्ति,
धरा पर धरा का पुत्र निराला ही आया था ॥
धोखा जो है देता उसे धोखा सदा देते रहो,
राष्ट्र द्रोहियों के लिये नग्न तलवार है।
आपको न माने उसके बाप को न मानो जी,
कृष्ण-नीति रीति का यही तो एक सार है ॥

ब्रजचन्द्र कृष्ण प्यारे

ब्रजचन्द्र कृष्ण प्यारे, भारत में फिर से आओ।
जन-मन सिसक रहा है, रस शांति का बहाओ ॥
सत्याचरण निर्बल है, अन्याय-छद्म-छल है।
मिथ्या, अनीति, चोरी, पापाचरण प्रबल है ॥
अपनी सुरीली वाणी व, शंख-ध्वनि सुनाओ।
कर्तव्य-च्युत सभी हैं, गीता का ज्ञान गाओ ॥
श्रीकृष्ण साश्रु बोले, कैसे बताओ आऊँ ?
बदनाम कर दिया है, भक्तों ने क्या बताऊँ ?
श्री नन्द घर पला मैं, दधि-दूध खूब खाया।
नवनीत के भंडारी, को चोर हा ! बताया ॥
सत्याचरण का पालक, पापों से दूर था मैं।
पर-दारा-पूज्यमाता, सा मानता सदा मैं ॥
रासादि नारियों से, कब मैंने था रचाया ?
कुब्जा-कुलक्षणी से, कब प्रेम मुझको भाया ?
जल-केलि-रत-रमणियों के, थे वस्त्र कब चुराये ?
निर्लज्ज-पाप-कर्मों के, दोष क्यों लगाये ?
प्रिय रुक्मिणी सी पत्नी, पाकर निहाल था मैं।
कब राधिका-प्रणय का धिक् प्रेम जाल था मैं ?
देखो पुराणियों ने, कैसा किया कलंकित ?
उन धूर्त-पामरों से, मैं हो रहा सशंकित ॥
अब तुम बताओ प्यारे, कैसे धरा पे आऊँ।
इन भेड़-चालियों को, कैसे सुमति सिखाऊँ ?
यदुवीर, योगिवर की, करुणा-कथा-व्यथा सुन।
वह भद्र आर्य बोला, कुछ सोचकर हृदय गुन ॥

हे ! योगिराज मोहन ! यह क्या सुना रहे हो ?
किन मन्द-मति जनों की, बातें बता रहे हो ?

गोपाल तुम कहाये, गो वंश वृद्धि करके।
गोपालना सिखाया, वन में विचर-विचर के ॥

संघर्ष में ही जन्में, संघर्ष लक्ष्य धारा।
सत्कर्म की कुशलता को, योग में विचारा ॥

तप से सुभार्या संग, बारह बरस बिताया।
निज सम सुवीर, अनुपम, प्रद्युम्न पुत्र पाया।

शिशुपाल, कंस आदिक शत्रु अनेक घाले।
रणनीति ने तुम्हारी अरिदल विदार डाले ॥

रत-धर्म पाण्डवों का, था न्याय पक्ष लेकर।
भारत-महा रचाया, दुष्टों को मात देकर ॥

धारण करो 'सुदर्शन', पुनि एक बार आओ।
खल-दल विनाश करके, सुख-शांति-रस बहाओ ॥

तम-कूप में पड़े जो, आकर हृदय बदल दो।
है कामना यही मम, 'निशंक' आत्म बल दो ॥

[रामकृष्ण आर्य 'निशंक' (प्रधान)
आर्य समाज वार्ड, गोविन्द नगर कानपुर

महाभारतकालीन महापुरुषों की दृष्टि में श्रीकृष्ण का चरित

(१) महर्षि वेदव्यास की सम्मति

यो वै कामान्न भयान्न लोभान्नार्थकारणात्।
अन्यायमनुवर्त्तेत स्थिरबुद्धिरलोलुपः।
धर्मज्ञो धृतिमान् प्राज्ञः सर्वभूतेषु केशवः।।

(महा॰ उद्योग॰ अ॰ ८३)

अर्थात् पाण्डवों को ओर से दूत रूप में जाने के लिये उत्सुक श्री कृष्ण के विषय में वेदव्यास जी कहते हैं-श्री कृष्ण लोभ रहित तथा स्थिर बुद्धि हैं। उन्हें सांसारिक लोगों को विचलित करने वाली कामना, भय, लोभ या स्वार्थ आदि कोई भी विचलित नहीं कर सकता, अतएव श्री कृष्ण कदापि अन्याय का अनुसरण नहीं कर सकते। इस पृथ्वी पर समस्त मनुष्यों में श्री कृष्ण ही धर्म के ज्ञाता, परम धैर्यवान और परम बुद्धिमान् हैं।

(२) पितामह भीष्म की सम्मति

ज्ञानवृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिकः।
पूज्ये ताविह गोविन्दे-हेतू द्वावपि संस्थितौ।।
वेदवेदांगविज्ञानं बलं चाप्यमितं तथा।
नृणां लोकेहि कस्यास्ति विशिष्टं केशवादृते।।

(महा॰ सभा॰ ३८ अ॰)

अर्थात् धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में अग्र पूजा के अवसर पर किसी सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति की पूजा की जानी थी। उस समय श्री कृष्ण का नाम प्रस्तुत करते हुए भीष्म जी कहते हैं—संसार में पूजा के दो ही मुख्य कारण होते हैं—ज्ञान और बल। श्री कृष्ण में ये दोनों गुण सर्वाधिक हैं, अतः श्री कृष्ण ही पूजा के योग्य हैं। इस समय संसार में कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है कि ज्ञान तथा बल में श्री कृष्ण से अधिक हो।

(३) महात्मा विदुर की सम्मति

अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं जिहीर्षसि ।
न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया ।।
अन्यो धनंजयात् कर्त्तुमेतत् तत्त्वं ब्रवीमि ते ।।
(महा०उद्योग०अ० ८८)

अर्थात् महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहते हैं हे धृतराष्ट्र ! पृथ्वी पर श्री कृष्ण सबके पूज्य हैं और वे जो कुछ कह रहे हैं वह हम सबके कल्याण की भावना से ही कह रहे हैं। और यह तुम्हारी बड़ी भूल है कि मैं श्री कृष्ण को बहुमूल्य उपहार देकर अपने पक्ष में कर लूंगा। श्री कृष्ण की अर्जुन के साथ जो दृढ़ मित्रता है, उसे आप धनादि के प्रलोभन से समाप्त नहीं कर सकते।

(४) धर्मराज युधिष्ठिर की सम्मति

तव कृष्ण प्रसादेन नयेन च बलेन च ।
बुद्धया च यदुशार्दूल तथा विक्रमणेन च ।।
पुनः प्राप्तमिदं राज्यं पितृपैतामहं मया ।
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष पुनः पुनरिंदम ।।
(म० शान्ति० ४३ प्र०)

अर्थात् महाभारत संग्राम की समाप्ति पर युधिष्ठिर श्री कृष्ण के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए कहते हैं—हे यादवों में श्रेष्ठ तथा शत्रुओं को जीतने में दक्ष श्री कृष्ण ! हमें यह हमारा पैतृक राज्य आपकी कृपा से प्राप्त हुआ है। आपकी शूरवीरता, अद्भुत युद्धनीति, लोकोत्तर बुद्धि कौशल तथा पराक्रम से ही हम इस संग्राम में विजयी हुए हैं, एतदर्थ आपका बार-बार धन्यवाद करते हैं।

(५) कौरवयुवराज दुर्योधन की दृष्टि में श्री कृष्ण का स्थान

श्री कृष्ण दुर्योधन के विपक्ष में तथा उसको हराने में मुख्य कर्णधार थे। पुनरपि श्रीकृष्ण के प्रति उसके हृदय में बड़ा सम्मान था। स्वयं दुर्योधन महात्मा विदुर के समझाने पर यह स्वीकार करता है—

स हि पूज्यतमो लोके, कृष्णः पृथुललोचनः ।
त्रयाणामपि लोकानां विदितं मम सर्वथा ।।
(महा० उद्योग० ८९ । ५)

अर्थात् हे विदुर जी ! मैं यह भलीभांति जानता हूं कि श्री कृष्ण तीनों लोकों में सर्वाधिक पूज्य हैं।

(६) कुरुराज धृतराष्ट्र

मोहाद् दुर्योधनः कृष्णं न वेत्तीह केशवम् ।
सर्वेष्वपि च लोकेषु बीभत्सुरपराजितः ।
प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः केशवे गुणाः ।।

अर्थात् मेरा पुत्र दुर्योधन श्री कृष्ण की महिमा का मोहवश निरादर कर रहा है । श्री कृष्ण में इतने गुण हैं, उनको गिनाया नहीं जा सकता । और इसीलिये उन्हें कोई पराजित नहीं कर सका है ।

श्रीकृष्ण परमेश्वर के परमभक्त थे

[१] प्रातः कालीन दिनचर्या

महान् पुरुषों की दिनचर्या भी आदर्श और जीवन को सुखी बनाने वाली होती है। 'महाजनो येन गतस्सः पन्थाः' इस लोक प्रसिद्ध वाग्धारा के अनुसार सामान्य जन महान् पुरुषों का ही अनुकरण करते हैं। श्री कृष्ण केवल राजनीति के ही खिलाड़ी नहीं थे, प्रत्युत योगिराज भी थे। उनके जीवन के कतिपय आदर्श द्रष्टव्य हैं—

वैशम्पायन जी जनमेजय से कहते है—हे जनमेजय भगवान् श्री कृष्ण जब आधा पहर रात बीतने में शेष रह गया तब वे शय्या को छोड़ देते थे। और जागकर ध्यानमार्ग में स्थित हो सत्य सनातन परमेश्वर का चिन्तन, स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना किया करते थे।

परमेश्वर के ध्यान के पश्चात् दैनिक कर्म शौचादि से निवृत होकर स्नान करते थे और फिर अपने योग्य गायत्री मन्त्र का जप करके अग्निहोत्र भी करते थे। तत्पश्चात् चारों वेदों के विद्वानों को बुलाकर वेदमन्त्रों का पाठ एवं उपदेश कराकर विद्वानों को गायों का दान किया करते थे।

इस उपर्युक्त कथन से सम्यक् स्पष्ट हो रहा है कि श्री कृष्ण स्वयं परमात्मा नहीं थे, क्योंकि वे तो स्वयं परमात्मा की भक्ति, हवन तथा वेदों का स्वाध्याय, हवन तथा निदिध्यासन भी किया करते थे। देखिये महाभारत के प्रमाण—

ततः शयनमाविश्य प्रसुप्तो मधुसूदनः!
याममात्रार्धशेषायां यामिन्यां प्रत्यबुद्धयत ।।
स ध्यानपथमाविश्य सर्वज्ञानानि माधवः।
अवलोक्य ततः पश्चात् दध्यौ ब्रह्म सनातनम् ।।
ततः उत्थाय दाशार्हः स्नातः प्राञ्जलिरच्युतः।
जप्त्वा गुह्यं महाबाहुरग्नीनाश्रित्य तस्थिवान् ।।

ततः सहस्रं विप्राणां चतुर्वेदविदां तथा ।
गवां सहस्रेणैकैकं वाचयामास माधवः ।।
(महा० शान्ति० ५३वां अध्याय)

(२) **यात्रा करते समय भी श्रीकृष्ण सन्ध्यादि दैनिक कर्मों को अवश्य करते थे :—**

(क) श्रीकृष्ण सन्धि का सन्देश लेकर जब हस्तिनापुर जा रहे थे तो मार्ग में ऋषियों के आश्रम में विश्राम किया, उस समय वैशाम्पायन जनमेजय से कहते हैं—

कृत्वा पौर्वाह्णिकं कृत्यं स्नातः शुचिरलंकृतः ।
उपतस्थे विवस्वतं पावकं च जनार्दनः ।।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन् कल्याणमग्रतः ।।
(महा० उद्योग० ८३ वां अ०)

अर्थात् श्रीकृष्ण ने दैनिक स्नानादि कार्यों को करके प्रातःकालीन सन्ध्यावन्दन तथा दैनिक अग्निहोत्र किया। तत्पश्चात् आश्रम के ऋषियों से कल्याणप्रद उपदेश सुना।

(ख) अवतीर्य रथात्तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि ।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ।।
(महा० उद्योग ८५।२१)

श्री कृष्ण जिस समय वृकस्थल पर पहुंचे, तब सूर्य अस्त होने वाला था, उस समय श्री कृष्ण ने रथ को रुकवाया और रथ से उतरकर शौच-स्नानादि करके सन्ध्या करने के लिये बैठ गये।

(ग) श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के निवास स्थान पर रात्रि को बहुत देर तक बातचीत करते रहे। वहीं रात्रि में विश्राम किया। प्रातःकाल होने पर—

तत उत्थाय दाशार्ह ऋषभः सर्वसात्वताम् ।
सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातः कार्यं जनार्दनः ।।
कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः ।
ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ।।
अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
सन्ध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ।।
(महा० उद्योग० ९४ वां अ०)

श्रीकृष्ण जी ने ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर प्रातःकालीन शौच स्नानादि कार्यों को किया, तत्पश्चात् सन्ध्या तथा अग्निहोत्र किया। दुर्योधनादि श्रीकृष्ण से जब मिलने आये थे, उस समय वे सन्ध्यावन्दन में लगे हुए थे।

(३) **श्रीकृष्ण युद्ध में भी सन्ध्या—समय होने पर सन्ध्या करना नहीं छोड़ते थे—**

ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने ।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥

(महा० द्रोण० अ० ७२)

संशप्तकों से युद्ध करते हुए अर्जुन को कुछ अनिष्ट की आशंका मन में होने लगी। उसकी आशंका को (अभिमन्यु की मृत्यु की घटना को आशंका) दूर करके श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ने ही परमेश्वर की उपासना की और फिर रथारूढ़ होकर युद्धस्थल से अपने शिविर के ओर चल पड़े।

क्या श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार थे : एक समीक्षा

(श्रीराम आर्य, कासगंज)

हमारे समाज की यह विशेषता रही है कि जिस किसी महापुरुष ने देश को पराधीनता से मुक्ति दिलवाई अथवा अत्याचारियों के दमन से जनता को राहत पहुँचाई, हमने उसे महामानव न मानकर साक्षात् परमात्मा का अवतार ही मान लिया। और परमात्मा का अवतार मान लेने पर हमने उसमें सभी अलौकिक दिव्य ईश्वरीय गुणों का होना जन्म से ही स्वीकार कर लिया तथा उसे ईश्वर सिद्ध करने के लिये नाना प्रकार की काल्पनिक कथाओं का सम्बन्ध उसके जीवन के साथ बताकर उसके ईश्वरत्व का प्रभाव सामान्य जनता पर जमाने का भगीरथ प्रयास किया गया। फलतः उसे भगवान् मानकर जनता धीरे-धीरे पूजने लगी। महान् पुरुषों के जीवन चरित्रों का अनुकरण करके दूसरे मनुष्य भी वैसा बनने का प्रयास करें, यह मानवीय भावना महापुरुषों को ईश्वर मानने पर समाप्त हो गई। क्योंकि वे तो ईश्वर ही थे, हम वैसा कार्य कैसे कर सकते हैं? इससे मानव की उन्नति एवं सोचने के सभी मार्ग अवरुद्ध हो गये।

(१) श्रीकृष्ण की शिक्षा गुरुकुल में हुई थी—

परन्तु इन महापुरुषों को ईश्वर का अवतार बनाने वाले अल्पज्ञ लोगों की कल्पनायें भी विकलांग होने से अधूरी ही रहीं। जैसे श्रीकृष्ण जैसे आप्त पुरुषों को जिन भागवतादि परवर्त्ती ग्रन्थकारों ने ईश्वर का अवतार तो सिद्ध किया, किन्तु वे अल्पज्ञ होने से यह भूल गये कि ईश्वर तो सर्वज्ञ है, उसके अवतार भी सर्वज्ञ ही होने चाहिएँ फिर उनको गुरु के आश्रम में जाकर शिक्षा प्राप्त कराने की क्या आवश्यकता है? श्रीमद्

भागवत पुराण में श्रीकृष्ण को अवतार तो माना है, साथ ही उनकी शिक्षा दीक्षा की बातें भी भूल से लिख गये। श्रीकृष्ण और बलराम जैसे ही विद्याप्राप्ति की अवस्था में पहुंचे, उस समय उनका यज्ञोपवीतसंस्कार यदुकुल के पुरोहित द्वारा कराया गया। भागवत्कार लिखते हैं—

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ।
गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ ।। २९ ।।

अर्थात् यदुवंश के कुल-पुरोहित आचार्य गर्ग ने श्रीकृष्ण और बलराम को गायत्री मन्त्र की शिक्षा देकर यज्ञोपवीत संस्कार कराया और उन्हें द्विजत्व की दीक्षा भी दी।

अथ गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ।
काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तीपुरवासिनम् ।। ३१ ।।

उपनयन-संस्कार कराने के पश्चात् श्रीकृष्ण और बलराम गुरुकुल में शिक्षा-प्राप्ति की इच्छा करते हुए काश्य-गोत्री, अवन्तीपुर=उज्जैन में रहने वाले गुरु सान्दीपनि मुनि के पास गये।

यथोपसादयन्तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ।
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ।। ३२ ।।
ततो द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ।
प्रोवाच वेदादिविज्ञानं साङ्गोपनिषदां गुरुः ।। ३३ ।।
सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्यायपथांस्तथा ।
तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ।। ३४ ।।

सर्वनरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्त्तकौ ।
सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृतुर्गुरोः ।। ३५ ।।

(भागवत स्कन्द १० अ० ४५)

श्रीकृष्ण और बलराम गुरु के आश्रम में बहुत ही संयम पूर्वक अपनी समस्त दिनचर्या को नियमित रखते हुए, बड़ी श्रद्धा से गुरु की सेवा करते हुए, और गुरु के पास किस शिष्टाचार से रहना चाहिये, उसका विशेष ध्यान रखते हुए गुरु जी से विद्या पढ़ने लगे। गुरु जी उनके सद्व्यवहार से बहुत प्रसन्न रहते थे। और सन्तुष्ट गुरू जी ने उन योग्य शिष्यों को छः अंगों तथा उपनिषदों सहित वेदों की शिक्षा दी। साथ ही राजकुमारों के योग्य न्यायविद्या, धनुर्वेद,धर्मशास्त्र, मीमांसादि शास्त्र, छः

प्रकार की राजनीति के शास्त्र, इत्यादि विद्याओं का भी विधिवत् अध्ययन कराया। ये दोनों भाई इतने कुशाग्रबुद्धि थे, कि गुरु जी से एक बार अध्ययन करके ही विद्या को समझ लेते थे।

श्रीकृष्ण को गुरुकुलीय शिक्षा के विषय में छान्दोग्योपनिषद् में भी संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। इसमें देवकी पुत्र श्रीकृष्ण के गुरु का नाम आंगिरस घोर है। ऐसा सम्भव है कि यहां मुख्य नाम न लेकर गोत्रनाम ही दिया हो। किन्तु यह तो निश्चित है कि श्रीकृष्ण को शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल में हुई थी। महाभारत के सभापर्व में श्रीकृष्ण की शिक्षादि के विषय में पितामह भीष्म जी ने कहा है—वेद वेदांगविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा। नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥

अर्थात् संसार में श्रीकृष्ण से अधिक वेद-वेदांग-विज्ञानवेत्ता तथा बलवान् इस समय कोई नहीं है। यह विशिष्ट ज्ञान और बल गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याध्ययन का ही फल था।

(२) श्रीकृष्ण और श्रीराम दोनों ही ईश्वर के उपासक थे—

उपासना या भक्ति अपने से विशिष्ट, महान्, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ आनन्दस्वरूपादि गुणों वाले ईश्वर की की जाती है। यदि श्रीकृष्ण अथवा श्रीराम ईश्वर के अवतार होते तो वे स्वयं अपनी उपासना या भक्ति क्यों करते? इससे स्पष्ट है कि वे ईश्वरावतार नहीं थे, प्रत्युत महान् पुरुष ही थे आर्यजाति के इतिहास गगन में श्रीकृष्ण और श्रीराम दो ही ऐसे उज्ज्वल निष्कलंक सितारे हैं, जो अपने समय में अपने लोकोत्तर कार्यों से सर्वमान्य एव श्रद्धास्पद रहे हैं। चाहे वे ईश्वरावतार रूप में हैं, अथवा महान् पुरुष के रूप में। इन दोनों ही महापुरुषों के गाथा काव्यों (रामायण एवं महाभारत) का अवगाहन करने से यह निर्भ्रान्त सिद्ध हो जाता है कि ये दोनों ही ईश्वरावतार नहीं थे, प्रत्युत अपने युग के निर्माता होने से महापुरुष थे। ये दोनों ही ईश्वर के अनन्य भक्त थे, देखिये उपर्युक्त ग्रन्थों की अन्तः साक्षी—

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि।
प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत्॥
(रा० आरण्य० सर्ग ११)

अर्थात् श्रीराम ने लक्ष्मण भाई के साथ विधि-पूर्वक सायंकालीन सन्ध्या करके अगस्त मुनि के आश्रम में प्रवेश किया और मुनि को सादर

अभिवादन किया। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के सन्ध्या करने के विषय में देखिये—

अवलोक्य ततः पश्चात् दध्यौ ब्रह्म सनातनम्।
ततः उत्थाय दाशार्हः स्नातः प्राञ्जलिरच्युतः॥
जप्त्वा गुह्यं महाबाहुरग्नीनाश्रित्य तस्थिवान्॥
(म॰ शा॰ ५३॰ प्र॰)

अर्थात् श्रीकृष्ण ने प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में प्रथम ईश्वर का ध्यान किया। तत्पश्चात् शौचादि दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर गायत्री का जप और अग्नि होत्र किया।

और आश्चर्य तो यह है कि श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार सिद्ध करने वाले भागवत पुराण (स्कन्द १० अ० ६९) में भी लिखा है—

क्वापि सन्ध्यामुपासीनं जपं तं ब्रह्मवाग्यताम्॥ २५॥
ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम्॥ ३०॥

नारद जी ने देखा कि श्रीकृष्ण जी प्रकृति से भी सूक्ष्म परब्रह्म का ध्यान कर रहे थे।

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन के अनुसार पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जी का चरित्र महाभारत में अत्युत्तम है। श्रीकृष्ण जी ने गुरुकुलीय शिक्षा के कारण अपना समस्त जीवन कमलवत् निर्लेप बनाया हुआ था। युद्धादि में रत होकर भी उसके फलों से बचे रहना कोई छोटी बात नहीं है। पाण्डव पक्ष से महाभारत के युद्ध के सूत्रधार श्रीकृष्ण ही थे उन्हीं की ऊहापोह का यह परिणाम हुआ कि पाण्डवों की विजय हुई। परन्तु भागवतादि पुराणों में भी श्रीकृष्ण के चरित्र को कलंकित ही किया गया है। शृंगार-रस के रसिकों ने श्रीकृष्ण को भी अपने जैसा ही बना लिया और उस महापुरुष के नाम पर रासलीलादि स्वांग रचाये गये। यदि महाभारत के श्रीकृष्ण के उत्तम चरित्र को ही जनता के समक्ष रखा जाये, तो विधर्मी भी श्रीकृष्ण की महिमा को जानकर आर्यजनता को धोखा देना भूल जायें। और कृष्णभक्तों को ईसा-भक्त न बना सकें।

वास्तविक कृष्ण महाभारत के या पुराणों के ?

—यशपाल आर्यबन्धु,
आर्य निवास, चन्द्र नगर, मुरादाबाद

अपने महापुरुषों के चरित्र को बिकृत कर प्रस्तुत करने वाली संसार में यदि कोई अभागी जाती है तो वह आर्य जाति है। और आर्य जाति के जितने महापुरुष हैं, उनमें सर्वाधिक बिकृत रूप में प्रस्तुत किया गया यदि कोई चरित्र है तो वह श्रीकृष्ण का ही है। जिस श्रीकृष्ण का चरित्र महाभारत में अति उज्ज्वल, अति पावन एवं सर्वगुण सम्पन्न महापुरुष के रूप में चित्रित किया गया है, उसी को इस अभागी जाति के तथाकथित हिन्दू भक्तों ने पुराणों में एवम् अन्य अनेकों ग्रंथों में और काव्यों में अति विकृत, अति घिनौने रूप में प्रस्तुत किया है। और विडम्बना यह है कि यह विकृत स्वरूप इतना प्रचार पा चुका है कि अब महाभारत के श्रीकृष्ण की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। फलतः अब लोग श्रीकृष्ण को क्या समझने लगे हैं ? बंकिम बाबू के शब्दों में—"**यही कि वे बचपन में चोर थे—दूध दही, मक्खन, चुराचुरा कर खाया करते थे, युवावस्था में व्यभिचारी थे, और उन्होंने बहुतेरी गोपियों के पातिव्रत्य धर्म को नष्ट किया, प्रौढ़ावस्था में वंचक और शठ थे—उन्होंने धोखा देकर द्रोणादि के प्राण लिए।**" बंकिम बाबू आगे पूछते हैं—"**कि क्या इसी का नाम भगवच्चरित्र है ?**" (कृष्णचरित्र पृष्ठ २)

और एक महापुरुष को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत न करके उसे अलौकिक रूप में प्रस्तुत करना यथार्थ चरित्र-चित्रण नहीं कहा जा सकता। डा० भवानीलाल भारतीय के शब्दों में—"**यही कृष्ण चरित्र की प्रथम विकृति है। उसे लौकिक धरातल से हटाकर अलौकिक पृष्ठभूमि पर खड़ा किया गया और उसके** सहज मानवीय रूप को भुलाकर उसे अप्रा-

कृतिक और बायवीय बना दिया गया। जब कृष्ण को ईश्वर मानकर उसके दिव्य अवतार की उपासना देश में प्रचलित हुई तो कृष्णोपासना के आधार पर अनेक सम्प्रदाय स्थापित हो गये।" (श्रीकृष्ण चरित्र पृष्ठ १०) डा० भवानीलाल भारतीय आगे लिखते हैं कि—"इन सम्प्रदायों के जन्म से पूर्व तक कृष्ण आदर्श चरित्रवान्, परम सात्विक आचार सम्पन्न और प्रतिभाशाली महापुरुष समझे जाते थे। परन्तु तांत्रिक साधना के प्रचार के कारण वैष्णव सम्प्रदायों में भी वासना मूलक शृंगार का मिश्रण होने लगा। महाभारत के कृष्ण जहां मर्यादापोषक, संयमी और सत्वगुण सम्पन्न हैं, वहां पुराणों, काव्य-ग्रन्थों एवं अन्य साम्प्रदायिक ग्रंथों में उनके जीवन को अत्यन्त विलासपूर्ण, स्थूल वासनायुक्त और रोमान्टिक बनाने का प्रयत्न किया गया है। भागवत और ब्रह्मवैवर्त जैसे पुराणों, जयदेव के गीत-गोविन्द जैसे काव्यों और गोपाल सहस्रनाम जैसे स्तोत्रों में सर्वत्र कृष्ण के परदारागामी स्वरूप का चित्रण किया गया है। "गोपालः कामिनीजारः चौरजारशिखामणिः" जैसी उक्तियां इन्हीं ग्रन्थों की हैं। भागवत में पर-दारागमन के संकेत स्पष्ट हैं, जिनके कारण राजा परीक्षित को कृष्ण के चरित्र के विषय में शंका होती है, परन्तु शुकदेव जी, समर्थ व्यक्ति की समर्थता की दुहाई देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का समावेश कराकर विकृति के इस पहलू को और भी बढ़ा दिया गया है। वहां राधा-कृष्ण के संभोग का जो कुत्सित वर्णन मिलता है, उसे देखकर लज्जा भी लज्जित होती है।

(श्रीकृष्ण चरित्र पृष्ठ १०-११)

आश्चर्य और दुःख है कि धर्मग्रंथ कही जाने वाली पुस्तकों का यह हाल है, तो अन्य पुस्तकों का क्या हाल हो सकता है? फिर विद्यापति और चण्डीदास सरीखे कवियों को खुलकर खेलने से कौन रोक सकता था? वस्तुतः भागवत आदि पुराणों ने श्रीकृष्ण के निर्दोष व्यक्तित्व पर जो मिथ्या लांच्छन लगाये हैं, वे उन ग्रन्थ-लेखकों की अपनी कुत्सित भावनाओं के ही द्योतक हैं। क्योंकि श्रीकृष्ण जी का चरित्र ऐसा उज्ज्वल, ऐसा पावन है कि जिस पर कोई लांच्छन लगाया ही नहीं जा सकता। आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने उच्च स्वर में उद्घोष किया कि—"देखो श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा

काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मतवाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?

(स० प्र० एकादश समुल्लास)

महाभारत में गोपी प्रसंग की कहीं कोई चर्चा नहीं है। इस सम्बन्ध में पं० चमूपति जी लिखते हैं कि—"महाभारत में गोपी प्रेम की गन्ध भी नहीं। और तो और किसी प्रसंग में कृष्ण की रासलीला या गान का वर्णन नहीं। यहां तक कि महाभारतकार ने कृष्ण के हाथों से वंशी तक न छुवाने की कसम खाली है। महाभारत का कृष्ण चक्रधर है, गदाधर है, असिधर है, मुरलीधर नहीं" (योगेश्वर कृष्ण, पृष्ठ २६-२७) महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण एक पत्निव्रती थे जबकि पुराणों ने उनकी सोलह हजार रानियां बना डालीं। महाभारत के कृष्ण अत्यन्त संयमी थे जबकि पुराणों का कृष्ण ...?(कृष्ण जी के लिए वह शब्द प्रयोग करते हुए हृदय कांप उठता है।) आश्चर्य है कि जिसने इकलौते पुत्र की प्राप्ति के लिए १२ वर्ष का घोर तप तपा, उसे ही पुराणकारों ने कुब्जा आदि के साथ संग करते हुए दिखाया है। तब वास्तविक कृष्ण महाभारत का हो सकता है या पुराणों का—इसे विज्ञ पाठक स्वयं सोच सकते हैं। वैसे सम्पूर्ण महाभारत ही श्रीकृष्ण जी की गौरव गाथा है। यदि उसमें से कृष्ण को निकाल दें तो फिर महाभारत में शेष रह ही क्या जाता है ? महाभारत में उन्हें पूज्यतम, श्रेष्ठतम महामानव के रूप में वर्णित किया गया है। ऐसा उत्तम जिसके लिए बंकिम बाबू ने लिखा था कि—"सच में ऐसा सर्वगुणान्वित और सर्वपाप रहित आदर्श चरित्र और कहीं नहीं है, न किसी देश के इतिहास में और न किसी काव्य में।"

महाभारत के अध्ययन से हमें कृष्ण जी के चरित्र में आर्य जीवन का सर्वांगीण विकास दिखाई देता है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें उन्हें सफ़लता न मिली हो। वे एक आदर्श विद्यार्थी हैं, एक आदर्श गृहस्थी हैं, एक आदर्श राजनीतिज्ञ हैं, एक आदर्श राजा हैं, एक आदर्श योद्धा हैं, एक आदर्श मित्र हैं, एक आदर्श कर्मयोगी हैं। वह कौन सा सद्गुण है जो महाभारत के कृष्ण में दृष्टिगोचर नहीं होता। विपरीत इसके

पुराणों के कृष्ण महापुरुष तो क्या सामान्य सदाचारी व्यक्ति भी नहीं कहला सकता। तो फिर आप स्वयं ही सोच सकते हैं कि वास्तविक कृष्ण कौन से हैं। सामान्यतः यह देखा गया है कि किसी के पूर्वजों में कोई अवगुण ऐब अथवा दोष हो, तो भी उनके अनुयायी उनके गुणों का ही बखान करते हैं, अवगुणों अथवा ऐबों का नहीं। किन्तु इस हिन्दू जाति को क्या कहें कि जो अपने महापुरुषों में कोई अवगुण न होने पर भी उन पर नाना अवगुण थोपने में अपनी कृतकार्यता समझती है। न जाने परमात्मा इस जाति को कब सुबुद्धि प्रदान करेगा ? हम उन सभी से जो अपने को हिन्दू और कृष्ण का अनुयायी मानते हैं बल पूर्वक कहना चाहते हैं कि अपने महापुरुषों को परिप्रेक्ष्य में देखने का यत्न करें। **वैसे भी आज भारत को मुरलीधर कृष्ण की नहीं, चक्रधर कृष्ण की आवश्यकता है।**

अन्त में हम एक निवेदन और भी करना चाहते हैं। वह यह—कि आप विचारें कि एक ओर तो वे आर्य लोग हैं कि जो महाभारत के आधार पर कृष्ण जी को एक मानव मानते हैं पर कैसा मानव ? एक आदर्श मानव जिस पर मानवता नाज कर सके, जिसमें मानवता कूट-कूट कर भरी हो, और दूसरी ओर समस्त हिन्दू सम्प्रदायवादी लोग, जो पुराणों के आधार पर श्रीकृष्ण को भगवान् अथवा ईश्वरत्व का दर्जा देते हैं और फिर उस पर मनमाने दोषारोपण से भी नहीं हिचकिचाते। इन दोनों में कौन सही है ? क्या ऐब को हुनर मानना ठीक है या फिर अवगुण को लीला मानना ठीक है ? और जिसमें कोई ऐब अथवा अवगुण हो ही नहीं तो उस पर मनमाने नाना दोष लगाना ठीक है ? क्या हिन्दू जाति महाकवि हरिऔध के निम्न उद्बोधन पर ध्यान देगी ?—"हम लोगों का एक संस्कार है, वह यह कि जिनको हम अवतार मानते हैं, उनका चरित्र जब कहीं दृष्टिगोचर होता है तो हम उसकी प्रति पंक्ति में या न्यून से न्यून उसके प्रति पृष्ठ में ऐसे शब्द या वाक्य अवलोकन करना चाहते हैं, जिसमें उनके ब्रह्मत्व का निरूपण हो।...आधुनिक विचारों के लोगों को यह प्रिय नहीं है कि आप पंक्ति-पंक्ति में तो भगवान् श्रीकृष्ण को ब्रह्म लिखते चलें और चरित्र लिखने के समय 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः प्रभुः' के रंग में रंगकर ऐसे कार्यों का कर्त्ता उन्हें बनावें कि जिनके करने में एक साधारण विचार के मनुष्य को भी घृणा होवे।" (प्रिय प्रवास की भूमिका) क्या पौराणिक बन्धु श्रीकृष्ण भक्तिधारा के इस भक्त कवि की इस यथार्थोक्ति पर विचार करेंगे ?

श्री कृष्ण का ही जन्मोत्सव क्यों

—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती
डी १४/१६ माडल टाउन, दिल्ली

महाभारत काल में भीष्म पितामह सभी के श्रद्धास्पद थे। आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के कारण वह इतिहास में अमर हैं। युद्ध कौशल में वह अप्रतिम थे। शान्ति पर्व के अन्तर्गत दिया गया उनका उपदेश उनके बौद्धिक उत्कर्ष का साक्षी है। किन्तु फिर भी उनका जन्म दिन नहीं मनाया जाता। क्यों? उनका ब्रह्मचर्य व्रत परिस्थिति विशेष का परिणाम था। न वह स्वतः स्फूर्त्त था और न उसका कोई लक्ष्य या प्रयोजन था। एक कामुक पिता की वासना पूर्ति में सहायक होना ही उसका एक मात्र उद्देश्य था। युद्ध में वह अपराजेय थे। किन्तु वह लड़े तो किसके लिये? यह जानते हुए भी कि कौरव अन्यायकारी है, फिर भी भीष्म उन्हीं की ओर से लड़े—अन्याय की रक्षा के लिये। जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो 'अर्थस्य पुरुषो दासः' कहकर अपनी विवशता का कारण बता चुप हो गये। इस दृष्टि से वह अहमदाबाद के पुलिस कमिश्नर से अच्छे नहीं थे। १९४८ में जब महात्मा गांधी की हत्या हुई तो 'संघ वालों ने मारा है' इस अफवाह के कारण संघ के प्रति जनता का आक्रोश उमड़ पड़ा। आर्य समाज अहमदाबाद के बाहर एक बोर्ड लगा था जिसपर 'आर्य वीर संघ" लिखा था। संघ शब्द देखते ही लोगों ने वहां आग लगा दी। सार्वदेशिक सभा के संयुक्त मन्त्री के नाते मैं वहां गया और वहां के पुलिस कमिश्नर से भेंट की। बातचीत के दौरान पुलिस कमिश्नर ने कहा—"आत्मा या अन्तः करण की बात हम नहीं जानते। उचित अनुचित पर विचार करना हमारा काम नहीं है। जिसकी नौकरी करते हैं उसका हुकुम बजाते हैं—नमक हलाल करते हैं। पुलिस कमिश्नर ने जो कुछ कहा वही तो भीष्म पितामह ने कहा था। अन्त समय में दिये गये उपदेश के सम्बन्ध में 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की उक्ति चरितार्थ होती है। भरी सभा में द्रौपदी का जो अपमान हुआ

उस दृश्य को जो व्यक्ति चुपचाप देखता रहा, उसके विषय में इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वह घर का बड़ा बूढ़ा था, या उसमें ब्रह्मचर्य का तेज था, या उसकी भुजाओं में बल था, या उसे धर्माधर्म या कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान था। ऐसे व्यक्ति का जन्मदिन कौन मनायेगा ?

उस समय के एक दूसरे महापुरुष थे महर्षि वेदव्यास। गीता के सामने सारा संसार नतमस्तक है। किन्तु वह तो महाभारत का अंशमात्र है। सम्पूर्ण महाभारत और वेदान्तदर्शन के रचयिता वेदव्यास की बुद्धि का कौन पार पा सकता है ? किन्तु उस बेचारे की सुनता कौन था ? 'ऊर्ध्वबाहुः विरौम्येष न हि कश्चित् श्रृणोति माम्' व्यास के इन शब्दों में कितनी बेवसी—कितनी वेदना है। व्यास ने जो कुछ कहा, बहुत अच्छा कहा किन्तु जो कुछ किया उस पर कौन गर्व कर सकता हैं ? तत्कालीन समाज द्वारा उपेक्षित ऐसे व्यक्ति का जन्मदिन आज कौन मनाने बैठेगा ?

युधिष्ठिर धर्मराज—धर्मपुत्र थे। जीवन में कभी झूठ नहीं बोला, वह एक बार परिस्थितिवश कुछ कह बैठा था। सो उसका भी उसे दण्ड मिला। भला इतना था कि मानापमान को भूलकर सदा समझौता करने को तैयार रहता था। ऐसे धर्मपुत्र में एक ही दोष था—जुआ खेलने के एक दोष ने उसे कहीं का नही छोड़ा। इसके कारण उसी को नहीं पूरे परिवार को वर्षों भटकते रहना पड़ा। जो व्यक्ति जुए में अपनी पत्नी तक को दाव पर लगा दे उस तथाकथित धर्मपुत्र का जन्मदिन कौन भला आदमी मनायेगा ?

ये सभी क्षत्रीय थे। उन बड़ों के बीच एक ब्राह्मण था—द्रोणाचार्य। समाज व्यवस्था में ब्राह्मण का सर्वोपरि स्थान हैं—किन्तु ब्राह्मणोचित गुणों के कारण। विद्या सीखने के लिये विद्यार्थी गुरु के पास जाया करते थे, गुरुजन विद्यार्थियों के घर पर जाकर नहीं पढ़ाते थे। द्रोणाचार्य पहले व्यक्ति थे जिन्होंने राजाश्रित होकर टयूटर के तौर पर शिष्यों के घर पर रहकर पढ़ाने का उपक्रम किया। आज कल के अध्यापकों की तरह छात्रों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यबहार की प्रवृति भी उनमें पाई जाती थी। एकलव्य के प्रति उनका व्यवहार सर्वविदित है। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने ब्राह्मणोचित धर्म का उल्लंघन तो किया ही, गुरु के गौरवपूर्ण पद को भी कलंकित किया। परिणामतः भीष्म की तरह वह भी सब प्रकार के अन्याय के प्रति उदासीन रहे। इतना ही नहीं, समय

आने पर अन्याय की रक्षा करने में प्रवृत्त हुए।

ऐसी विषम परिस्थिति में श्री कृष्ण के रूप में एक ऐसा व्यक्तित्व उभरकर आया जो **'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'** कृत-संकल्प था—जिसकी भुजाओं में बल था और मस्तिष्क में दूर तक सोचने का सामर्थ्य। जिसके माता पिता को उसके जन्म से पहले कारागार में डाल दिया गया हो वह जन्म से ही विद्रोही और क्रांतिकारी क्यों नहीं बनता ? इसलिये श्री कृष्ण ने जहाँ भी पाप होते देखा-सुना वहीं उसका दमन करने दौड़ा गया। एक-एक करके कितने ही अत्याचारियों का संहार किया और अन्त में कुरुक्षेत्र के मैदान में 'सर्व वं पूर्ण स्वाहा' कर समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधकर शान्ति की स्थापना की। १८५७ में भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के सन्दर्भ में श्री कृष्ण के सामर्थ्य का स्मरण करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है—**"जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके [अंग्रेजों के] धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते।"**

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने लिखा है—**"मनुष्य उसी को कहना** कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुखदुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे अनाथ, और निर्बल क्यों न हों—उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ और महा बलवान भी हो, तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण, सदा किया करें।" अर्थात् जहाँ तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और अन्यायकारियों के बल को उन्नति सर्वथा किया करे।

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत 'मनुष्यता को इस कसौटी पर श्री कृष्ण पूरी तरह खरे उतरते हैं। वह जीवन भर न्याय की रक्षा के लिए अन्यायकारियों से संघर्ष करते रहे। मनुष्य स्वाभाव से स्वार्थी है। जो उसके काम आता है वह उसे कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता है। श्री कृष्ण के समकालीन बड़े २ लोगों में सभी अपने लिये जिये और अपने लिये मरे। श्री कृष्ण औरों, धर्मात्माओं, दीन-दुःखियों, पीड़ितों—के लिये जिये और उन्हीं के लिये लड़ते २ मर गये। इसलिए समाज व राष्ट्र आज भी उन्हें स्मरण करते हुए प्रति वर्ष उनका जन्मोत्सव मनाता है।

आजकल राजनेताओं का दो प्रकार का जीवन होता है—सार्वजनिक जीवन (Public life) (Private Life) सार्वजनिक जीवन में आदर्श

प्रतीत होनेवालों नेताओं के भीतर झाँककर देखने पर उनसे घृणा हो जाती है। श्रीकृष्ण के व्यक्तिगत जीवन के विषय में महर्षि ने लिखा है—

'श्री कृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है।' उनका गुण कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।

जिस दयानन्द के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उन्होंने किसी को लाँछित किये बिना नहीं छोड़ा, उनका श्री कृष्ण को इतना बढ़िया प्रमाण पत्र देना अपने आप में कितना महत्वपूर्ण है। महाभारत काल में ऐसा महान् व्यक्ति अन्य कोई नहीं हुआ। इसलिए श्री कृष्ण का ही जन्मोत्सव मनाया जाता है, अन्य किसी का नहीं।

योगेश्वर कृष्ण का नीति नैपुण्य

—शिवकुमार शास्त्री, काव्य-व्याकरणतीर्थ
एम० ८७, साकेत, नई दिल्ली-१७

न केवल भारत के अपितु समस्त विश्व के इतिहास में कृष्ण जैसा अद्भुत महापुरुष दूसरा नहीं हुआ। स्व० पं० भगवतदत्त जी ने भारतवर्ष के वृहद् इतिहास में कृष्ण के कार्यों का विवेचन करते हुए ठीक ही लिखा है कि गत पांच हजार वर्षों में कृष्ण की शतांश योग्यता वाला भी कोई व्यक्ति भारत में नहीं हुआ।

इस महापुरुष को १२५ वर्ष का जीवन प्राप्त हुआ। इनके पिता वसुदेव इनके बाद तक भी जीवित रहे। जिस दिन कलियुग प्रारम्भ हुआ उसी दिन इनकी जीवन लीला समाप्त हुई।

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने।
प्रतिपन्नः कलियुगः······वायु० ९९/४२८

इस महापुरुष को वयस्क होते ही उस समय की नितान्त प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझना पड़ा। उस समय का भारत एक बीहड़ जंगल के समान था। समस्त आर्यमर्यादाएं नष्टप्राय थीं। जीवन भर घोर परिश्रम के बाद युधिष्ठिर के राज्य के ३६ वर्षों में ही वे कुछ निश्चिन्त हो कर रहे। पांडवों की सफलता और उस समय के भारत को व्यवस्थित करने का समस्त श्रेय उचित रूप में इसी महापुरुष को दिया जा सकता है। पद पद पर पांडव का प्रथ प्रदर्शन— ये न करते तो पांडव तो कहीं भी उलझकर असफल हो जाते। कृष्ण न सम्भालते तो गांडीव के धिक्कारने पर अर्जुन ने ही तलवार से युधिष्ठिर का सिर काट दिया होता। अनेक अवसरों पर धर्म, अधर्म, सत्य और असत्य के भंवरों को चीरकर नाव को किनारे पर लगाना उसी मेधावी कर्णधार का काम था। इस समय भी कई बार महाभारत पढ़ने पर कृष्ण का आचरण पाठक को उनके सत्य का पक्षपाती मानने में ठिठका देता है—यथा एक बार यह घोषणा करने पर कि महा-

भारत के युद्ध में मैं शस्त्र नहीं उठाऊंगा, किन्तु भीष्म के तीसरे और नवें दिन के युद्ध में भीषण नरसंहार देखकर तथा भीष्म की तुलना में अर्जुन का पलड़ा हलका देखकर कृष्ण आग बबूला हो गये और शस्त्र हाथ में लेकर भीष्म को मारने के लिए रथ से कूद पड़े। अर्जुन और युधिष्ठिर ने बहुत अनुनय विनय करके और यह कहके कि आपके अपने वचन के विपरीत आचरण करने पर न केवल बदनामी होगी अपितु इसका युद्ध पर दूरगामी प्रतिकूल प्रभाव होगा। साथ ही अर्जुन ने यह आश्वासन दिया कि मैं अब तक कुछ ढीला लड़ रहा था, अब पूरी शक्ति से युद्ध करके पितामह को पराजित करके रहूंगा—तब कहीं कृष्ण वापस हुए और रथ संचालन को सम्भाला।

ऐसे स्थलों पर कृष्ण के सत्यपक्ष का यही समाधान है कि धर्म की तात्कालिक दुहाई देकर उस आचरण से यदि परिणाम में धर्म का ह्रास और अधर्म का वर्चस्व बढ़ता है तो उस सत्य और धर्म के नाम की उपेक्षा करके हमें परिणाम को ध्यान में रखना चाहिए। ऐसे अवसरों पर कृष्ण की नीति का यही समाधान है जो उन्होंने जरासन्ध वध से लेकर दुर्योधन के ऊरुभंग तक अपनायी। यही धर्मपक्ष है। इसी कारण सत्य के परम पक्षपाती और कठोर आलोचक ऋषि दयानन्द जी ने कृष्ण की नीति का न केवल अनुमोदन किया अपितु वह प्रशंसापत्र दिया—जिसे कृष्ण के अतिरिक्त दूसरा कोई उनसे पा नहीं सका। सत्यार्थ-प्रकाश के ११वें समुल्लास में ऋषि कृष्ण के विषय में लिखते हैं—

"देखो, श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुणकर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।" ऋषि इसी समुल्लास में द्वारिका के रण छोड़ की कहानी की आलोचना करते हुए कृष्ण की वीरता की निम्न शब्दों में प्रशंसा करते हैं—"जब संवत् १९१४ (सन् १८५७) के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर की मूर्तियाँ अंग्रेजों ने उड़ा दी थी, तब मूर्ति कहाँ गयी थीं? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टाँग भी न तोड़ सकी। **जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता, तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते।**"

इस भूमिका के पश्चात् अब हम कृष्ण के नीति-नैपुण्य लेख की सीमा को देखते हुए दिग्दर्शन कराते हैं—

कृष्ण पांडवों के अनुरोध पर सन्धि का सन्देश लेकर कौरवों के पास गये। दुर्योधन और उसकी चौकड़ी ने कृष्ण को फुसलाने के लिए उनके स्वागत और मनबहलाव की बड़ी तैयारी कर रखी थी। किन्तु कृष्ण ने उस सब की ओर दृष्टिपात तक नहीं किया और सभा में पहुंच गये। सबसे यथायोग्य अभिवादनादि के होने पर दुर्योधन ने भोजन की प्रार्थना की तो कृष्ण ने तपाक से उत्तर दिया। भोजन तम्हारे यहाँ स्वीकार नहीं है। क्योंकि भोजन करने की दो ही परिस्थितियाँ होती हैं तीसरी नहीं।

संप्रीति-भोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः ।
न त्वं सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम् ।।

भोजन या तो प्रेम में किया जाता है अथवा संकट के समय जब रोटी का कोई सहारा न हो और भूख ने पेट में आग जला रखी हो तो उस आपत्ति में मानापमान का बिना ध्यान किये भोजन स्वीकार कर लिया जाता है। तो प्रेम तो तुम रखते नहीं और ऐसा संकट का सताया मैं भी हूं नहीं कि अपमान का भोजन करूं। यह कहकर विदुर के घर गये। वहाँ अपनी बुआ कुन्ती से भी बातें कीं और भोजन विश्राम भी किया।

दूसरे दिन सभा में बहुत युक्तियुक्त भाषण किया। सभा के सभ्यों को भी उनके कर्तव्य का बोध कराया और सम्पूर्ण सम्भाव्य परिणामों का दिग्दर्शन कराते हुए भाषण का उपसंहार किया। सभा के वयोवृद्ध और विद्यावृद्ध, धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी सभी ने कृष्ण के बिचारों का अनुमोदन करते हुए पांडवों को उनका न्याय्य भाग देने के लिए दुर्योधन को कहा। किन्तु दुर्योधन ने किसी की एक नहीं सुनी और एक बार तो कृष्ण को गिरफ्तार करने के मनसूबे बनाने लगा। किन्तु सात्यकी तथा दूसरे सभ्यों की भर्त्सना पर वह रुक गया।

कृष्ण सभा से उठे और रथ पर बैठते हुए कर्ण को अनुरोध पूर्वक अपने रथ पर बैठा लिया और अब देखिये कृष्ण को नीति के पैंतरे—

कृष्ण जो कर्ण से कहने लगे—

उपासितास्ते राधेय ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनानसूयया ।।

कर्ण तुमने वेदविद् विद्वानों का सत्संग किया है और बड़े श्रद्धा-भाव से वेद के तत्त्वों को उनसे जाना है।

त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनान् ।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः ।।

कर्ण तुम वेद के सनातन रहस्यों को जानते हो, तुम धर्म शास्त्रों के सूक्ष्म तत्वों को जानने में निपुण हो। कुमारी का पुत्र उस कन्या से विवाहित पति का पुत्र ही माना जाता है, यह शास्त्रीय मर्यादा है। अतः कर्ण धर्मानुसार तुम पाण्डु के पुत्र हो। इसलिए शास्त्रीय व्यवस्थानुसार इस राज्य के राजा तुम बनोगे। तुम्हारे पितृपक्ष में पार्थ लोग होंगे और मातृपक्ष में हम वृष्णि लोग होंगे। आज तुम मेरे साथ चलो तो सबको यह विदित हो जावे कि तुम युधिष्ठिर के बड़े भाई हो। पाँचों पाण्डव तुम्हारे चरण छूएंगे। द्रौपदी के पांचों बेटे और अभिमन्यु तथा अन्य समागत अन्धक वृष्णि लोग सब तुम्हारे चरणों में नतमस्तक होंगे। सोने के घड़ों में औषधयुक्त भरे हुए पानी से राजकन्याएं तुम्हारा अभिषेक करेंगी। द्रौपदी भी तुम्हारे सत्कार के लिए उपस्थित होगी। धौम्य मुनि के पौरोहित्य में यज्ञ होगा और मेरे साथ सब पाण्डव और राजा लोग तुम्हें पृथिवीपति के रूप में अभिषिक्त करें। युधिष्ठिर तुम्हारा युवराज होगा। युधिष्ठिर फिर तुम्हारे रथ पर श्वेत पंखा लेकर हवा करेगा। महाबली भीम तुम्हारे सर पर श्वेत छत्र सम्भालेगा। सैकड़ों घुंघरुओं से गूंजते हुए और सिंह चर्म से ढके हुए सफेद घोड़ों वाले रथ को अर्जुन चलाएगा। नकुल सहदेव, अभिमन्यु, अन्धक, वृष्णि, दाशार्ह और दाशार्ण और मैं सब राजा लोग तुम्हारी सेवा में रहेंगे सब भाईयों के साथ राज्य उपभोग का आनन्द लो। तुम्हारा पांडवों के साथ भाईचारे का स्नेहपूर्ण सम्बन्ध आज स्थापित हो। यह श्रीकृष्ण की सूझबूझ थी। उन्होंने सोचा कि मेरे हस्तिनापुर आने का कुछ तो फल होना चाहिए।

किन्तु कर्ण भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। उसने विनयपूर्वक उत्तर दिया मैं यह जानता हूं कि मुझे जन्म कुन्ती ने दिया है।

सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यनयद् गृहान् ।
राधायाश्चैव मां प्रादात् सौहार्दान्मधुसूदन ।।

मुझे देखकर अधिरथ सूत उठाकर अपने घर ले आया और स्नेह से अपनी पत्नी राधा को दे दिया।

मत् स्नेहाच्च राधायां सद्यः क्षीरमवातरत् ।
सा मे मूत्र-पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ।।

मेरे स्नेह से राधा के स्तानों में दूध उतर आया, उसी ने मेरे मल मूत्र की शुद्धि की।

तस्याः पिण्ड-व्यपनयं कुर्यादस्मद्‌विधः कथम्।
धर्मविद्धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः॥

तो मेरे जैसा धर्मशास्त्रों का ज्ञाता उनके उपकारों की अनदेखी कैसे कर सकता है? इसके अतिरिक्त—

धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधन-समाश्रयात्।
मया त्रयोदश-समा भुक्तं राज्यमकण्टकम्॥

दुर्योधन के सहारे मैंने कौरव परिवार में १३ वर्ष तक निष्कंटक राज्य भोगा है। इसलिए हे कृष्ण मैं किसी भी भय अथवा प्रलोभन में अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकता।

इतने पर भी कृष्ण निराश होकर नहीं बैठे। कृष्ण की इस बात से प्रेरणा लेकर कुन्ती कर्ण के पास गयी और उसने भी अपना पुत्र बताकर उसे पांडवों का साथ देने को कहा। इस पर कर्ण ने एक वचन दिया कि माता—

न जातु ते विनङ्क्ष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनी।
निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि॥

तू पांच पुत्रों में वाली प्रसिद्ध है, तेरे पांच पुत्र बने रहेंगे। अन्तर केवल इतना आयेगा कि या तो अर्जुन का स्थान कर्ण ले लेगा अथवा मेरे मरने पर वे पांच के पांच रहेंगे ही।

कृष्ण के मन में फिर भी कर्ण को वीरता के कारण चिन्ता थी। युद्ध के प्रारम्भ के समय युधिष्ठिर और चारों भाई रथों से उतर कर, सब शस्त्र छोड़कर भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य का प्रणाम करने और आशीर्वाद लेने चले तो कृष्ण फिर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कर्ण के पास जा पहुंचे और कहने लगे—कर्ण सुना है भीष्म से मतभेद के कारण भीष्म के जीवित रहने तक तुम शस्त्र नहीं उठाओगे। तो तब तक के लिए तुम हमारे पक्ष में आ जाओ। जब भीष्म न रहें तो फिर दुर्योधन के साथ चले जाना। अस्तु।

आगे चलकर युद्ध में जब अर्जुन और कर्ण का संग्राम हुआ और कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में फंस गया तो कर्ण ने विनयपूर्वक धर्मयुद्ध की मर्यादा के अनुसार अर्जुन से कहा कि जब तक मैं अपने रथ का चक्र

न निकाल लूं तब तक तुम मेरे ऊपर प्रहार मत करना। यह कहकर वह पहिया निकालने में लग गया। अर्जुन भी कर्ण की बात सुनकर थोड़ी देर ठिठक गया। इसी अवसर पर कृष्ण बोले—

तमब्रवीद् वासुदेवो रथस्थो राधेय,
दिष्टया स्मरसीह धर्मम्।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना,
निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम्॥

रथ पर बैठे कृष्ण ने कर्ण को कहा कर्ण! आश्चर्य है तुम भी धर्म की रट लगा रहे हो। प्रायः नीच विपत्ति में फंसने पर अपने भाग्य को कोसते हैं, अपने पाप कर्मों को नहीं सोचते।

जब एकवस्त्रा द्रोपदी को दुर्योधन ने दुःशासन शकुनि और सौबल से बलपूर्वक भगवाया था। "न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः" तब कर्ण तुम्हें धर्म याद नहीं आया था। जब द्यूतकौशल से अपरिचित युधिष्ठिर को जुआरी शकुनि ने जीता था "क्व ते धर्मस्तदा गतः।" तब तुम्हारा धर्म कहां चला गया था? बनवास के १३ वर्ष बीतने पर भी पाण्डवों को उनका भाग नहीं लौटाया। "क्व ते धर्मस्तदागतः।" तब तुम्हारा धर्म कहां गया था? भीमसेन को जब सांपों से डसवाया और उसे विषाक्त भोजन दिया "तब तुम्हारा धर्म कहां था।" जब सोते हुए पांडवों को लाक्षागृह में आग लगाकर जलाना चाहा तब तुम्हारा धर्म कहां गया था? जब दुःशासन के पंजों में जकड़ी हुई द्रोपदो से तुम मजाक कर रहे थे, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था। तुमने द्रोपदी को कहा पांडव तो मरकर नरक में गये अब और किसी को पति चुन ले "तब तुम्हारा धर्म कहां गया था।" जब राज्य के प्रलोभन से पांडवों को दुबारा जुए के लिए बुला रहे थे, "तब तेरा धर्म कहां गया था।" जब बालक अभिमन्यु को ६ महारथ मिलकर मार रहे थे, "तब तुम्हारा धर्म कहां गया था।"

यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि,
किं सर्वथा तालु-विशोषणेन।
अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत,
तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि॥

यदि यह धर्म तुम्हें इन अवसरों पर याद नहीं आया तो अब गला फाड़ने से क्या लाभ? आज तुम धर्म की कितनी दुहाई दे लो किन्तु तुम जीवित नहीं बच सकते।

एवमुक्तस्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत।
लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान् ।।

जब कृष्ण ने कर्ण को इस प्रकार खरी-खरी सुनाई तो लज्जा से सिर झुका लिया और कोई उत्तर नहीं दिया।

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम् ।
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल ।।
(महा० कर्णपर्व० ९१ वां अ०)

तब कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि दिव्यास्त्र से इसके टुकड़े करके इसे नीचे गिरा दे।

इसी प्रकार कृष्ण ने अपने नीति नैपुण्य से जरासन्ध के दुर्ग में पीत वस्त्रधारी स्नातक के वेश बनाकर भीम और अर्जुन के साथ प्रवेश किया और अर्जुन भीम को मौन धारण कराके जरासन्ध को कहलवाया कि आधी रात के पश्चात् ये हमारे स्नातक मौन खोलते हैं—तभी मिलें। जब जरासन्ध आया तो कुछ उत्तर प्रत्युत्तर के पश्चात् भीम से उसकी कुश्ती करा दी। कुश्ती में भी जब दोनों थक गये तो भीम को कृष्ण ने कहा कि—

"क्लान्तः शत्रुर्न कौन्तेय लभ्यः पीडयितुं रणे।
पीडयमानो हि कात्स्न्येन जह्याज्जीवितमात्मनः"

थके हुए शत्रु को युद्ध में अधिक पीड़ित नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसे और दबाया जायेगा तो वह मर जायेगा। इस वाक्य की शब्दार्थ विपरीत यह ध्वनि थी कि हिम्मत करके दो रगड़े और लगा दे तो इसका कामतमाम हो जाएगा। भीम सम्हला और जरासन्ध के प्राण पखेरू उड़ गये। इसी प्रकार का नीति चातुर्य भीष्म, द्रोण, जयद्रथ, दुर्योधन आदि सभी को गिराने में कृष्ण ने बरता। कृष्ण को नीति का निचोड़ यह है कि—

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य—
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः,
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ।।

कपटी के साथ कपट से बरतो और सरलों के साथ सरलता से चलो।

श्री कृष्ण की रणनीति

—राजवीर शास्त्री

[१] 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति

श्री कृष्ण राजनीति के कुशल खिलाड़ी थे। वे देश, काल, परिस्थिति को देखकर राजनीति का प्रयोग करते थे। महाभारत युद्ध में कौरवों के सेना के बड़े-बड़े महारथी जब मर गये, ग्यारह अक्षौहिणी सेना भी छिन्न-भिन्न हो गई, और कौरव पक्ष में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा को छोड़कर दुर्योधन ही शेष रह गया। तब दुर्योधन पैदल ही एक बड़े द्वैपायन नामक सरोवर में जा छिपा। यद्यपि उस समय अश्वत्थामा ने दुर्योधन को बहुत आश्वासन भी दिया था कि हमारे रहते हुए तुम्हें युद्ध से पलायन नहीं करना चाहिये। किन्तु दुर्योधन इतना हताश एवं भयभीत हो गया था, कि उसका धैर्य स्थिर नहीं रह सका। श्री कृष्ण तथा पाण्डवों ने व्याधों गुप्तचरों के द्वारा दुर्योधन का पता लगाया, और खोज करते-करते उस सरोवर पर पहुंच गये। उस समय श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा[1]—हे युधिष्ठिर! यह दुर्योधन माया, छल कपट की विद्या में अतीव निपुण है, इसका वध माया से ही करना चाहिये। क्योंकि सच्ची नीति यही है कि मायावी का वध माया से ही करना चाहिये।

तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर वाग्बाणों से दुर्योधन की भर्त्सना करते हुए बहुत कुछ कहा—हे दुर्योधन! तू समस्त क्षत्रियों और अपने कुल का विनाश करके कैसे जल में छिप गया है। शूरवीर तो युद्ध क्षेत्र से कभी भी पलायन नहीं करते, तूने यह कायर अनार्यों का मार्ग क्यों अपनाया है। वह तेरा स्वाभिमान कहाँ चला गया, जिसके नशे में तू सूई के अग्रभाग के बराबर भूमि भी देने को तैयार नहीं था। युधिष्ठिर की फट-

---

१. मायाविनाइमां मायां मायया जहि भारत।
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद्युधिष्ठिरः॥
(महा० शल्य० ३१ अ०)

कार सुनकर दुर्योधन का स्वाभिमान उद्बुद्ध हुआ और वह तालाब से बाहर आकर कहने लगा—हे युधिष्ठिर ! मुझे पाण्डवों में से किसी से भी भय नहीं है। मैं साधु पुरुषों की धर्म की नीति का अनुसरण कर युद्ध करना चाहता हूं। धर्मराज युधिष्ठिर उसकी बातों में आकर दुर्योधन को यह वचन दे बैठे—यह सौभाग्य की बात है कि तुम[1] शूरवीर हो तुम्हारी यह इच्छा ठीक ही है कि हमारे में से एक-एक के साथ युद्ध करूं। अतः हे वीर ! मैं तुम्हें यह वर देता हूं कि तुम हम में से किसी एक का भी वध कर दोगे तो सारा राज्य तुम्हारा ही होगा। और मारे गये तो स्वर्ग को प्राप्त करोगे।

हे दुर्योधन। तू कवच एवं शस्त्रादि धारण करके पाँचों पांडवों में से जिसके साथ युद्ध करना चाहो, उस एक का ही वध कर देने पर तुम राज्य के स्वामी बन जाओगे।[2]

श्री कृष्ण जी को जब युधिष्ठिर के वरदान का पता लगा, तो वे बहुत दुःखी हुए और युधिष्ठिर को धमकाते हुए कहते हैं—हे युधिष्ठिर ! तुमने यह क्या कर दिया। सारा बना बनाया खेल ही बिगाड़ दिया। यदि दुर्योधन ने तुम्हें अथवा नकुल आदि में युद्ध के लिए वरण कर लिया तो क्या स्थिति होगी। तुम दुर्योधन के पौरुष तथा राजनीति को नहीं जानते हो। तुमने फिर यह जुआ खेल लिया, पहले जुए से भी यह अतिशय भयंकर है। यह दुर्योधन गदा युद्ध में बहुत दक्ष है, इसका मुकाबला तुम्हारे में से कोई नहीं कर सकता। साक्षात् इन्द्र भी गदा युद्ध में इसे पराजित नहीं कर सकता। इसी बीच में भीमसेन कहने लगे—हे मधुसूदन ! तुम किसी प्रकार का विषाद मत करो, मैं आज इस पापी का वध करके समस्त वैरों से छुटकारा पाऊँगा। भीमसेन के वचनों को सुनकर दुर्योधन मौन नहीं रह सका और वह युद्धार्थ सन्नद्ध होकर भीमसेन से युद्ध करने लगा। दोनों के भयंकर युद्ध को श्री कृष्ण ने ध्यान से देखा

१. स्वयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम्।
हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ॥
(महा० शल्य० ३२ अ०)

२. पंचानां पाण्डवेयानां येन त्वं योद्धुमिच्छसि।
तं हत्वा वै भवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ॥
(महा० शल्य० ३२ वां अध्याय)

और भली भाँति परखकर गदा युद्ध में दक्ष श्री कृष्ण अर्जुन से कहने लगे हे अर्जुन[1]! यद्यपि भीमसेन अधिक बलवान है, किन्तु दुर्योधन भीम से गदा युद्ध में अधिक कुशल है। भीम धर्म पूर्वक युद्ध करता रहा तो दुर्योधन को कदापि जीत नही सकेगा। अतः जुए के समय दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा का पालन करे और मायावी दुर्योधन को माया से ही नष्ट करे। ऐसा संकेत भीम को देकर दुर्योधन को मरवाया। इस प्रकार समयानुकूल प्रतिज्ञा का स्मरण कराना, और युद्ध के नियमों का भी उल्लंघन करके मायावी शत्रु का नाश करने की नीति में श्री कृष्ण अतीव निपुण थे।

(२) मित्र की रक्षा में नीति-विरुद्ध-आचरण भी ठीक है :—

भीमसेन के द्वारा युद्ध नियमों का उल्लंघन करके दुर्योधन को मारा गया देखकर गदा युद्ध महारथी बलराम को बहुत क्रोध आया और भीम को धिक्कारते हुए कहा—इस धर्म युद्ध में नाभि से नीचे जो भीमसेन ने प्रहार किया है, वह धिक्कारने योग्य कर्म है। क्योंकि धर्म नीति के अनुसार नाभि से नीचे प्रहार नहीं करना चाहिये। बलराम को यह धर्म-विरुद्ध आचरण सहन नहीं हुआ वे अपना शस्त्र हल उठाकर भीमसेन

---

१. भीमसेनस्तु धर्मेण युद्धयमानो न जेष्यति।
अन्यायेन तु युध्यन् वै हन्यादेव सुयोधनम्॥
(महा० शल्य० ५८ वां अध्याय)
सोऽयं प्रतिज्ञां तां चापि पालयत्वरिकर्षणः।
मायाविनं तु राजानं माययैव निकृन्ततु॥
(महा० शल्य० ५८ वां अध्याय)
अहो धिक् यदधो नाभेः प्रहृतं धर्म विग्रहे।
अधो नाभ्यां न हन्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः।
ततो लाङ्गुलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद् बली।
तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः।
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद् बलवद् बली।
उवाच चैनं संरब्धं शमयन्निव केशवः।
आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा॥
विपरीतं द्विषत्स्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः॥
(महा० शल्य० ६० वां अध्याय)

को मारने के लिये दौड़े। इस समय यदि श्री कृष्ण नीति से काम नहीं लेते तो बड़ा अनर्थ हो जाता। श्री कृष्ण ने तुरत भागकर अपनी भुजाओं से बलराम को पकड़कर रोका और नीति का उपदेश कर शान्त किया।

श्री कृष्ण ने बलराम को शान्त करते हुए कहा--भय्या बलराम! अपनी उन्नति छः प्रकार से होती है (१) अपनी उन्नति, (२) मित्र की उन्नति और (३) मित्र के मित्र की उन्नति। इसी प्रकार इसके विपरीत शत्रु पक्ष में शत्रु की हानि, शत्रु के मित्र की हानि तथा शत्रु के मित्र के मित्र की हानि। अपने मित्रों की हानि के निवारण के लिये सदा प्रयत्न करना चाहिए। देखो! ये पाण्डव धर्म का आश्रय करने वाले हैं और हमारे सहज मित्र हैं। बुआ पुत्र होने से हमारे सम्बन्धी भी हैं। शत्रु ने इनके साथ सदा ही छलकपट करके इनकी हानि की है। भीम ने दुर्योधन की जांघ तोड़ने की पहले प्रतिज्ञा की थी, क्षत्रिय को अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना ही चाहिये। भैय्या बलराम! आप तो परंतप शत्रुओं को सदा संताप देने में प्रसिद्ध हो। भीम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके शत्रु को मारा है, उसमें भीम का कोई दोष नहीं है, अतः आप शान्त ही रहें। इन मित्र तथा सम्बन्धी पाण्डवों की उन्नति से ही हमारी भी उन्नति है।

३. असत्य भी कभी धर्म हो जाता है।

कर्ण के साथ युद्ध करते हुए वीर अर्जुन को युधिष्ठिर नहीं दिखाई दिये, तब अर्जुन और श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के पास गये। युधिष्ठिर ने उनको देखकर यह समझ लिया कि ये कर्ण को मार कर ही यहां आये हैं। किन्तु जब ऐसा पाया तो युधिष्ठिर को क्रोध आ गया और वे अर्जुन की भर्त्सना करने लगे कि तुम युद्ध से भागकर क्यों आये हो? तुमने आज माता कुन्ती के दूध को भी लजा दिया, क्या क्षत्रियों का यही धर्म होता है? इत्यादि भर्त्सना भरे शब्द कहते हुए युधिष्ठिर यह भी कह गये—

धिग् गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्यम्॥

अर्थात् गाण्डीव धनुष को धिक्कार है। अर्जुन भाई के मुख से ये शब्द सुनकर क्रोध से तिलमिला उठे। क्योंकि अर्जुन की यह प्रतिज्ञा थी जो मेरे गाण्डीव को धिक्कारेगा, उसको मैं जीवित नहीं छोड़ूंगा। इसलिये—

असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम्॥

अर्जुन ने भाई युधिष्ठिर को हत्या करने के लिये गुस्से में होकर तलवार उठा ली। ऐसी दशा में यदि श्रीकृष्ण अर्जुन को नहीं समझाते तो बना बनाया खेल ही बिगड़ जाता। श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन ! तुम धर्म के सूक्ष्म रहस्य को नहीं जानते। तुमने कभी नासमझ अवस्था में यह प्रतिज्ञा की थी, आज उसके पालन करने की बात कह रहे हो। प्राणियों की हिंसा करना सबसे बड़ा अधर्म है। यदि किसी प्राणी की रक्षा झूठ बोलने से होती है तो वह झूठ बोलना भी धर्म होता है। और तुम अपने बड़े भाई को प्रतिज्ञावश होकर मारते हो, यह तो महापाप है, प्रतिज्ञा पालन नहीं। देखो सत्य व असत्य क्या है।—

भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत्॥

यदि असत्य बोलने का परिणाम मंगलकारक हो तो वह असत्य भी धर्म है और यदि सत्य बोलने का परिणाम अमंगलकारक हो तो वहां सत्य भी अधर्म है। इसलिये तुम्हारी सत्य प्रतिज्ञा से यदि अमंगल होता है तो यह प्रतिज्ञा-पालन भी अधर्म ही है।

४. श्रीकृष्ण शत्रु पक्ष के संकल्पों को जानकर समयोचित कार्य करने में दक्ष थे :—

कौरव पक्ष की समस्त सेनाओं व वीर पुरुषों का संहार होने पर पांचों पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने के लिये हस्तिनापुर गये। वहां जाकर उन्होंने देखा कि धृतराष्ट्र और समस्त स्त्रियों का करुण-क्रन्दन हो रहा था और धर्मराज युधिष्ठिर को घेर कर कहने लगीं कि तुम्हारी धर्मज्ञता और दयालुता कहां चली गई कि जो तुमने ताऊ, चाचा, भाई, गुरु, गुरुपुत्र, मित्र, पितामहादि का भी वध कर डाला। सभी सम्बन्धियों व मित्रों को मारकर जो राज्य तुम्हें मिलेगा, उसका क्या करोगे? धर्मराज भी उनके विलाप में ही कुछ समय तक डूबे रहे, तत्पश्चात् धृतराष्ट्र को जाकर प्रणाम किया। शोक से व्याकुल धृतराष्ट्र ने अप्रसन्न मन से ही युधिष्ठिर को गले लगाकर विलाप किया और दुर्योधन का वध करने वाले भीम के प्रति ईर्ष्या रखते हुए खोज करने लगे। भीम के प्रति धृतराष्ट्र की क्रोधाग्नि को बढ़ता हुआ देखकर श्रीकृष्ण उसकी मन की भावना को समझ गये और तुरन्त हाथ से भीम

---

१. महा० कर्ण पर्व० ६९ वां अ०।

को झटका देकर दूर किया और उसके स्थान पर भीम की लोहे की मूर्ति धृतराष्ट्र[1] के सामने कर दी। जिस बात को दूसरे व्यक्ति समझ भी नहीं पाये थे, श्रीकृष्ण ने उसका उत्तर देकर शीघ्र ही भीम की रक्षा की। धृतराष्ट्र ने उस मूर्त्ति को ही भीम समझकर इतने बल से दबाया कि मूर्ति के टुकड़े टुकड़े[2] हो गये। लोह-मूर्ति को बल से दबाने के कारण धृतराष्ट्र के मुख से खून और छाती में पीड़ा होने लगी और धृतराष्ट्र को तब संजय ने बहुत समझाया कि तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। क्रोध की अग्नि जब शान्त हो गई, तब धृतराष्ट्र हा भीम ! कहकर विलाप करने लगे। उस समय श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को समझाया—हे धृतराष्ट्र ![3] आप शोक न करें मैंने अबके अतिशय क्रोध को समझकर भीम की लोहे की प्रतिमा ही आपके आगे रखी थी और भीम को मृत्यु के मुख से पृथक् कर दिया था। मैंने आपके संकल्प तथा दश हजार हाथियों के तुल्य आपके बल को पहले ही जानकर ऐसा किया था। आपके पुत्र दुर्योधन ने ही एक लोहे की भीम की जो मूर्ति बनबाकर यहां रखी हुई थी, उसी के टुकड़े आपने किये हैं, भीम सुरक्षित है, अतः आप शोक बिल्कुल न करें।

५. महाबली कर्ण को मारने में सफलता का रहस्य

अर्जुन और कर्ण का भयंकर युद्ध हो रहा था अचानक कर्ण के रथ का बांया पहिया पृथिवी में धंस गया। कर्ण ने रथ से उतर कर अर्जुन से कहा हे अर्जुन ! दो घड़ी प्रतीक्षा[4] करो जब तक मैं अपना पहिया निकाल लेता हूं। हे अर्जुन ! तुम शूरवीर तथा युद्ध धर्मों को जानने वाले हो। मैं तुम्हारे से किसी प्रकार डरकर ये बातें नहीं कह रहा हूं, प्रत्युत युद्ध नियमों का पालन करने का आग्रह ही कर रहा हूं।

---

१. तस्य संकल्पमाज्ञाय भीमं प्रत्यशुभं हरिः ।
भीममाक्षिप्त पाणिभ्यां प्रददौ भीममायसम् ।।

२. तं गृहीत्वैव पाणिभ्यां भीमसेनमयस्मयम् ।
बभञ्ज बलबान् राजा मन्यमानो वृकोदरम् ।।

३. मा शुचो धृतराष्ट्र ! त्वं नैष भीम त्वया हतः ।
आयसी प्रतिमा ह्येषा त्वया निष्पातिता विभो ।।
(महा० स्त्रीपर्व० १२ अध्याय०)

४. भो भोः पार्थ ! महेष्वास मुहूर्त्तं परिपालय ।
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात् ।।

श्रीकृष्ण द्वारा कर्ण को फटकार—(१) हे कर्ण ! दुर्जन व्यक्ति विपत्ति में भाग्य की निन्दा करते हैं, अपने कुकर्मों को नहीं। अब तू युद्ध धर्मों की याद दिला रहा है उस समय तेरा धर्म कहां चला गया था कि जब भरी सभा में रजस्वला द्रौपदी का अपमान किया था ? (२) धर्मराज युधिष्ठिर को जब शकुनि ने छल से जुए में पराजित किया था, तब तेरा धर्म कहाँ था ! (३) बनवास का पूर्ण समय बीत जाने पर भी पाण्डवों का राज्य वापिस नहीं दिया, उस समय तेरा धर्म कहाँ गया था ? (४) जब दुर्योधन ने तुम्हारी सलाह से भीम को विषमिश्रित अन्न खिलाया व सर्पों से डसवाया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? (५) जब वरणावत नगर में लाक्षा-भवन में सोते हुए पाण्डवों को तुमने जलाने का प्रयत्न किया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? (६) भरी सभा में नीच दुःशासन ने जब द्रौपदी का उपहास किया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था ! (७) जब अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को सात महारथियों ने चारों तरफ से घेरकर मारा था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? यदि इन अवसरों पर धर्म की मर्यादा नहीं रही, तो आज धर्म की दुहाई क्यों ?[1] श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर कर्ण[2] लज्जित होकर उत्तर नहीं दे सका और सिर नीचे झुका लिया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को संकेत किया कि हे अर्जुन ! अब अच्छा अवसर है, कर्ण को दिव्यास्त्रों से घायल कर मार गिराओ।[3] पिछली करतूतों ने अर्जुन के घाव पर नमक का काम किया और वे और तेजी से बाणों की वर्षा करने लगे। प्रतिरोध में कर्ण ने भी ब्रह्मास्त्र का अर्जुन पर प्रयोग किया। अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र से उत्पन्न अग्नि को वरुणास्त्र चलाकर शमन कर दिया। और अर्जुन को किसी तीव्रतम बाण से घायल करके अपने रथ के चक्र को निकालने लगा। अर्जुन की उस समय दयनीय स्थिति थी, किन्तु यदि यह अवसर निकाल गया तो फिर कर्ण को पराजित नहीं किया जा सकेगा, श्रीकृष्ण ने यह विचार कर अर्जुन को फिर संकेत किया कि हे अर्जुन ![4] कर्ण जब तक

---

१. द० महा० कर्णपर्व० ९१ वें अ० के १-१२ श्लोक।

२. एवमुक्तस्तदा कर्णो···नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान् ॥
(महा० कर्ण० ९१ अ०)

३. ततोऽब्रवीद वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम्।
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महालम् ॥

४. छिन्द्धस्व मूर्धानमरेः शरेण, न यावदारोहति
वै रथं सः ॥ (महा० कर्ण० ९१ वां अ०)